वैदिक गणित शास्त्र

डॉ० एम० एल० व्यास

मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता
जयपुर - १

प्रकाशक
उमरावसिंह मंगल
संचालक
मंगल प्रकाशन
गोविन्द राजियों का रास्ता,
जयपुर – १

प्रथम संस्करण
१९८४
मूल्य— ३०-०० (तीस रुपये मात्र)

मुद्रक
मगन प्रेस, जयपुर

समर्पण

श्री पितृ मातृ चरणेषु

पूज्य पिताजी पं० गोवधन जी व्यास

व

आदरणीया माता जी श्रीमती सरस्वती देवी व्यास

को

सादर समर्पित

विषयानुक्रम

प्राक्कथन

वैदिक गणित शास्त्र का प्राक्कथन लिखने में मैं हर्ष का अनुभव करता हूं। विद्वान् लेखक ने अपने गहन अध्ययन के आधार पर प्रमाणित किया है कि वैदिक काल में आर्यों ने गणित के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति कर ली थी। ग्रन्थ की विषय वस्तु का परिचय देते हुए लेखक ने भूमिका में कहा है—"पुस्तक को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय है। साथ ही आर्यों को गणित की आवश्यकता किस रूप में और क्यों थी, यह बताने का प्रयास किया गया है। दूसरे अध्याय में अंक गणित से सम्बन्धित सिद्धान्तों, तीसरे में रेखा गणित के सिद्धान्तों-साध्य एवं रचनाओं (Theorems And Constructions) तथा चतुर्थ अध्याय में बीजगणित के मूलभूत सिद्धान्तों (Fundamental Principles) का वर्णन किया गया है। अन्तिम अध्याय में उन विद्वानों की भ्रान्ति का निवारण किया गया है, जो यह कहते हैं कि आर्य लिखना नहीं जानते थे। उन्हें यह बताया गया है कि आर्य ऋग्वैदिक काल (पूर्व वैदिक काल से ही लेखन कला (Art Of Writing) से परिचित थे।"

ग्रन्थ की भूमिका लेखक के विस्तृत अध्ययन को प्रमाणित करती है। लेखक ने पाश्चात्य एवं पौर्वात्य दोनों ही क्षेत्रों के विद्वानों के वेदों की पुरातनता विषयक विचारों तथा हिन्दुओं की गणित—अंक गणित, रेखा गणित तथा बीज गणित—विषयक देन से सम्बन्धित विचारों को प्रस्तुत किया है। मैं एक दो अंश प्रमाण के रूप में और जोड़ना चाहूंगा। एक विशिष्ट जर्मन गणितज्ञ तथा अन्वेषक फेलिक्स क्लेन Felix Klein) ने अपने 'अंक गणित, बीज गणित एवं विश्लेषण' विषयक व्याख्यान में कहा है—हमें प्रासंगिक रूप से ध्यान देना चाहिए कि विज्ञान के अन्य शब्दों के समान "अरेबिक अंक" भी अपसंज्ञा है। इस लेखन प्रणाली का आविष्कार अरबों ने नहीं, हिन्दुओं ने किया था। फिर एक अमेरिकी दार्शनिक एवं इतिहासकार विल डूरां (Will Durant) ने अपनी "सभ्यता की कहानी" में कहा है, "हिमालयीय अवरोध के पार भारत ने हमें व्याकरण एवं तर्कशास्त्र, दर्शन एवं नीति कथा, सम्मोहिनी विद्या तथा शतरंज तथा इससे भी बढ़कर हमारे अंक तथा हमारी दाशमिक प्रणाली जैसी देन दी है।

जो पाठक संस्कृत से परिचित नहीं हैं, उन्हें लेखक के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये क्योंकि उन्होंने विशिष्ट वैदिक भाषा में बद्ध ज्ञान उन्हें उपलब्ध कराया है। उन्हें भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान के शोध पत्र के अंक २७ सन् १६४६ भाग १ व

२ में प्रकाशित एक लेख के अध्ययन में भी विशेष आनन्द की अनुभूति होगी। उसमें कटपयादि प्रणाली की व्याख्या है जिनने आर्यों को लम्बे अंक सूत्र ज्ञात करने तथा छन्द के द्वारा निष्कर्ष निकालने की योग्यता प्रदान की। निम्न तालिका से ज्ञात होगा कि १,२,३,………७,८,९,० अंक किस प्रकार एक अक्षर द्वारा व्यक्त होते थे।

कपटयादि प्रणाली

कादि	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
टादि	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
पादि	प	फ	ब	भ	म	—	—	—	—	—
यादि	य	र	ल	व	श	ष	स	ह		
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

व्याख्या :—प्रत्येक अंक अपने सम्बन्धित कॉलम के किसी भी अक्षर से व्यक्त किया जा सकता है। इस प्रकार १ को क अथवा ट अथवा प अथवा य द्वारा तथा ० को ञ अथवा न द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

सद्रत्नमाला नामक एक संस्कृत ग्रन्थ में π (पाई) का मूल्य शुद्ध रूप से दशमलव के सत्रह स्थानों तक निम्न पंक्ति के द्वारा दे दिया गया है—

यद भद्राम्बुधि सिद्ध जन्म गणित श्राद्धस्म यद् भूपगीः

उक्त तालिका द्वारा इसकी व्याख्या कैसे की जाय ? इसका नियम यह है—

नञावचश्च शून्यानि संख्याः कटपयादयः

मिश्रे तूपान्त हल् संख्या, न च चिन्त्यो हलस्वरः

अर्थ :—न तथा ञ शून्य को प्रकट करते हैं। कटपयादि तालिका अन्य अंकों को व्यक्त करती है। संयुक्त अक्षर में स्वर से पूर्व के व्यंजन को ही लिया जाय। स्वर रहित व्यंजन अर्थात् हल व्यंजन को नहीं लिया जाय अर्थात् छोड़ दिया जाय।

इस प्रकार इस सिद्धान्त को सूत्र में आये हुए संयुक्त व्यंजनों पर इस प्रकार लागू किया जाएगा।

द्र में र को ही लिया जायगा, जो व्यक्त करता है २
म्बु में ब „ „ „ „ „ „ „ „ „ „ ३
द्ध में ध „ „ „ „ „ „ „ „ „ „ ९
न्म में म „ „ „ „ „ „ „ „ „ „ ५
श्म में म „ „ „ „ „ „ „ „ „ „ ५
द्भू में भ „ „ „ „ „ „ „ „ „ „ ४
और इस प्रकार

यद भद्राम्बुधि सिद्ध जन्म गणित श्राद्धाश्य यद् भूपगी
४ २ ३ ९ ७ ९ ८ ५ ३ ५ ६ २ ९ ५ १ १ ४ ३

आधुनिक पद्धति के अनुसार जब उक्त अंकों को विपरीत क्रम में लिखा जायगा, तो हमें ।। (पाई) का निम्न मूल्य ज्ञात होगा—

३.१४१, ५९२, ६५३, ५८९, ७९३, २४

इसमें निश्चित रूप से दशमलव बिन्दु हमें लगाना होगा।

अन्तिम अध्याय में यह मान्यता स्थापित की गई है कि आर्यों को लेखन कला का ज्ञान था। लेखक अपने इस पर्यवेक्षण के आधार पर अध्याय को आरम्भ करता है, "वर्तमान में पढ़ाई जाने वाली भारतीय इतिहास की अधिकांश पाठ्य पुस्तकों में इसी बात को दोहराया गया है कि आर्य लिखना नहीं जानते थे।" इसके उपरान्त लेखक ठोस प्रमाण देता हुआ आगे बढ़ता है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचता है, "इन प्रमाणों के प्रकाश में यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि वैदिक काल में लेखन कला का प्रचार था।"

पूरी पुस्तक में लेखक ने अत्यन्त सावधानी पूर्वक विशिष्ट सन्दर्भों के आधार पर अपनी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं। अन्त में उन्होंने पठनीय प्रामाणिक सामग्री भी दी है। मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ।

डॉ० जी. एस. महाजनी

कुछ शब्द

"वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है" इस तथ्य की घोषणा कर महर्षि दयानन्द ने वैदिक साहित्य में निहित और वर्णित विज्ञान के शाश्वत सत्यों की खोज करने की प्रेरणा दी थी। यह बड़े हर्ष का विषय है कि डॉ० मांगीलाल व्यास मयंक ने वैदिक साहित्य में गणित शास्त्र के उल्लेख एवं विवेचन का मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। ज्योतिष को वेद का अंग माना गया है और गणित ज्योतिष विषयक अनेक सिद्धान्त मूलतः वैदिक संहिताओं में पाये जाते हैं। इस प्रकार इस विषय पर शोध एवं अनुसंधान की अपार सम्भावनायें हैं।

आर्यों में प्रचलित यज्ञ प्रक्रिया, वेदी का निर्माण, खगोल-शास्त्र विषयक धारणायें, ग्रहों की गति से सम्बन्धित बातें ये सभी गणितशास्त्र से सम्बन्धित हैं। प्राचीन शुल्व सूत्रों में भी इसी विषय को स्फुट किया गया है। अभी तक वैदिक गणित से सम्बन्धित कोई ग्रन्थ राष्ट्रभाषा में प्रकाशित नहीं हुआ था। डॉ० मयंक का यह प्रयास प्रारम्भिक होने पर भी एतद् विषयक नवीन आयामों को उद्घाटित करने की प्रेरणा देगा, इसी विश्वास के साथ मैं लेखक के प्रयास की अभिशंषा करता हूं।

डॉ० भवानी लाल भारतीय
अध्यक्ष एवं प्रोफेसर,
दयानन्द अनुसंधान पीठ,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

भूमिका

वेद विश्व वांगमय की प्राचीनतम ज्ञान-निधि है, जिसमें मानव सुलभ ज्ञान की सम्पूर्ण विधाएँ समाहित हैं। कतिपय लेखक वेदों को मात्र आर्यों की धर्म-पुस्तक स्वीकार करते हैं। उनका तर्क है कि इनमें विभिन्न देवी-देवताओं की उपासनाओं के मन्त्र सकलित है। किन्तु अगर तटस्थ दृष्टि से वेद संहिताओं का सर्वाङ्गीण व विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इनमे समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान-विधाओं का व्यवस्थित संग्रह है। स्वय वेद शब्द का शाब्दिक अर्थ "ज्ञान-संग्रह" है। प्राचीन एव अर्वाचीन हिन्दु धन साहित्य के अतिरिक्त जैनो, बौद्धों व सिक्खो के धर्म ग्रन्थों में भी वेद-वागमय की महत्ता का स्पष्ट उल्लेख है। अधिकाश पाश्चात्य विद्वान् भी वैदिक-ज्ञान की सत्यता एवं महत्ता को स्वीकार करते हैं। जब वाल्टेयर नामक यूरोपीय विद्वान को यजुर्वेद संहिता उपहार स्वरूप भेंट की गई तो उसने इसे स्वीकार करते हुए बताया कि "इस मूल्यवान उपहार के लिए पश्चिम सदा पूर्व का ऋणी रहा है।"[1] जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने इसे मानव जाति की शिक्षा के अध्याय का सूत्रपात करने वाला अत्यन्त दुर्लभ[2] तथा विश्व इतिहास के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति करने वाला[3] साहित्य कहा है। लिम्रोन डेबल्स ने ऋग्वेद को यूनान के प्राचीनतम अवशेष से भी श्रेष्ठतम भारतीय अवशेष के रूप मे स्वीकार किया है।[4] इसी प्रकार कीथ, मेकडानल, वेबर, ग्रीफित प्रभृति पाश्चात्य विद्वानो ने भी वेदों के अतुल ज्ञान एवं अकाट्य प्रमाणों को हृदयंगम किया है।

वेदों का निर्माण काल—इस महत्वपूर्ण ज्ञान निधि के निर्माण का प्रश्न बड़ा विवादास्पद रहा है। विविध पौर्वात्य व पाश्चात्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं :—

मैक्समूलर—इनका कहना है कि वेदों के प्रारम्भिक काल का पता लगाना सरल कार्य नही है, कदाचित ही कोई व्यक्ति इस तथ्य का पता लगा सके कि वास्तव में इनका निर्माण कब हुआ ? फिर भी "सिक्रेड बक्स आफ द ईस्ट" नामक पुस्तक माला के अन्तर्गत ऋग्वेद-संहिता का प्रकाशन करते समय इन्होने इसका निर्माण काल

---

१ – Willson's Essays, Vol. III, P. 304.

२ – Maxmular—India : What Can it teach us, P. P. 78-79.

३ – Willson's Essays, Vol III, P. 339.

४ – लिम्रोन डेबल्स द्वारा १४ जुलाई सन् १८८४ को वेनरेबल विक्टर ह्यूगो की अध्यक्षता में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय-स हित्य-परिषद में पठित निबन्ध।

अनुमानता १२०० ई० पू० बतलाया है, इसी काल सीमा को कोल ब्रुक, कीथ, विलसन आदि पाश्चात्य विद्वानो ने भी स्वीकार किया है।

आर्क विशप प्राट—बाईबिल के अनुसार सृष्टि रचना का आधार मानते हुए आर्क विशप प्राट ने वेदो का निर्माण-काल २००० ई० पू० माना है।[1] और अपने मत के समर्थन से कहा है कि बाईबिल के अनुसार सृष्टि की रचना ६००० से ७००० ई० पू० वर्षों के मध्य किसी समय हुई थी। इसके बाद ही अन्य वस्तुओं का निर्माण हुआ है।

जैकोबी—इन्होने ज्योतिष को आधार मानकर वेदों का निर्माण काल ६५०० वर्ष पूर्व माना है। कल्प-सूत्र के "ध्रुव हम स्थिराभव" वाक्य के आधार पर जैकोबी ने उस समय ध्रुव तारे को स्थिर व अधिक चमकीला माना है। यह स्थिति ईसा से ४७०० वर्षों पूर्व की है इसी को आधार मानकर इन्होंने कल्प-सूत्रो का निर्माण काल ४७०० वर्ष पूर्व तथा वेद मन्त्रो मे आये हुए ग्रहो व नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर वेदों का निर्माण-काल ६५०० वर्ष पूर्व माना है।

***लोकमान्य तिलक**—ज्योतिष को ही आधार मानकर लोक मान्य बाल* गंगाधर तिलक वेदों का निर्माण ८५०० वर्ष पूर्व मानते है। इनका कहना है कि मन्त्र संहिताओं के काल में नक्षत्रों की गणना मृगशिरा से होती थी। मृगशिरा को उस समय पहला नक्षत्र माना जाता था व इस नक्षत्र के सूर्य में दिन व रात बराबर अवधि के होते थे। खगोल व ज्योतिष के अनुसार यह स्थिति ६५०० वर्ष पूर्व थी, साथ ही इन मन्त्र संहिताओं के निर्माण का क्रम इससे भी २००० वर्ष पहले से चल रहा था, अतः उनके अनुसार वेदों का निर्माण ८५०० वर्ष पहले हुआ था।

नारायण भवन राव पावगी—भूगर्भ शास्त्र को आधार मानकर वेदों में वर्णित सामग्री के अनुसार पावगी महोदय ने वेदो का निर्माण काल ९००० वर्ष पूर्व माना है।

अमलनेरकर—वेदों मे वर्णित समुद्रो, नदियो, भूखण्डो आदि का भूगर्भ शास्त्रीय अध्ययन कर अमलनेरकर भी इस निष्कर्ष पहुँचे कि वेदो की रचना ६६०० वर्ष पूर्व हुई थी।

यूनानी लेखकों का विवरण—सिकन्दर के आक्रमण के समय अनेक यूनानी लेखक भारत आये थे, भारत मे आकर उन्होंने अन्य कार्यों के साथ-साथ भारतीय राजाओं की वंशावलिया भी एकत्रित की थी। उन वंशावलियो के आधार पर चन्द्रगुप्त मौर्य के समय तक १५३ राजवंश ६०४३ वर्ष तक शासन कर चुके थे। इस *शासन समय के बहुत पहले ही वेदो का निर्माण हो चुका था। यूनानी लेखकों के इसी* विवरण के आधार पर विद्वानो ने वेदो का निमाण ८००० वर्ष पूर्व ठहराया है।

---

१ – पं० राम गोविन्द त्रिवेदी द्वारा "वैदिक साहित्य" पृ० २० उद्धृत।

अविनाश चन्द्र दास—इन्होंने बताया कि वेदों का निर्माण ७५०० वर्ष पहले हो गया था।

वेदों के निर्माण काल के प्रश्न पर और भी अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं, किन्तु, दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण किसी एक सर्वमान्य समय पर विद्वान् एक मत नहीं हो सके हैं फिर भी भारत के लिए सौभाग्य की बात है कि विश्व की प्रथम गौरवपूर्ण साहित्यिक कृति के रूप में वेद ही स्वीकृत किये गये हैं, जो आज भी हमारी प्राचीन सांस्कृतिक चेतना की स्वर्णिम धरोहर हैं।

वेदों की विषय सामग्री—वेद संचित ज्ञान राशि के बृहद् कोश हैं, जिनमें भारतीय आर्य जाति का तत्कालीन वैभव संग्रहीत है, इनकी विषय सामग्री इतनी व्यापक है कि वर्तमान की सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रगति इनमें तिरोहित हो जाती है। यह एक तथ्यपूर्ण सत्य है जिसकी पुष्टि छान्दोग्य उपनिषद् की निम्न घटना से होती है—

एक बार नारद सनत्कुमार के पास ब्रह्म-विद्या प्राप्त करने हेतु गये। सनत्कुमार ने नारद से प्रश्न किया कि अब तक तुम कौन कौन सी विद्याओं का अर्जन कर चुके हो ? इस पर नारद ने बतलाया कि :—

> ऋग्वेदं भगवोऽध्येमियजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं
> चतुर्थमितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यम्
> राशिं दैवं निधि-वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां
> ब्रह्मविद्यां भूत विद्यां क्षत्र विद्यां नक्षत्र विद्यां
> सर्पदेवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि[१] ॥ — छान्दोग्य उपनिषद्, ७।१।२।

अर्थात्—हे भगवान् ! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, पितृविद्या, राशि विद्या (Mathematics), देवविद्या, निधिविद्या (Mining Engineering), तर्क शास्त्र (Logic) ब्रह्मविद्या (Spiritual Science), भूत विद्या, क्षत्र विद्या (Military Science) नक्षत्र विद्या (Astro logy) सर्पविद्या, देवजन विद्या आदि पढ़ा हूं।

उस समय छः वेदांगों—क्रमशः शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष व व्याकरण तथा चार उपवेदों—क्रमशः गान्धर्ववेद (Music) आयुर्वेद (Medical Science) धनुर्वेद (Archeryship or the Military Science) व अर्थवेद (Economics) का भी अध्ययन होता था। इस प्रकार उस समय की विषय सामग्री आज की तुलना में कहीं अधिक विस्तृत एवं व्यापक थी, साथ ही उसका वर्गीकरण भी वैज्ञानिक था। आज तो इनमें से अनेक (देव विद्या, ब्रह्म विद्या, भूत विद्या, सर्प विद्या आदि) विद्याओं का या तो लोप हो चुका है अथवा इनका निरन्तर ह्रास हो रहा है। गणित विद्या का तो उस समय इतना अधिक विकास हो चुका था कि वर्तमान का गणित शास्त्र पूर्णरूपेण इस पर ही आधारित लगता है।

वेदों में गणित—प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य वेदों में वर्णित गणित शास्त्र के इसी विकसित स्वरूप का परिचय कराना है। उस समय गणित शास्त्र का सर्वोच्च स्थान था। वेदांग ज्योतिष में कहा गया है कि "जिस प्रकार मयूर के सिर पर शिखा सर्वोच्च स्थान पर होती है व नाग (के मुंह) में मणि का जो महत्व है वही महत्व वेदांग शास्त्रों में गणित का है :—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥

परवर्ती साहित्य में इसी प्रकार गणित की अनेक प्रशस्तियां मिलती हैं, किन्तु डा० केजोरी द्वारा लिखित "हिस्ट्री ऑफ मैथेमिटिक्स" तथा ए० एन० व्हाइट हेड द्वारा लिखित "एन इन्ट्रोडक्शन टू मैथेमिटिक्स" नामक पुस्तकों में भारतीय गणित शास्त्र के बारे में उन्होंने अनेक त्रुटियां की हैं। व्हाईट हेड ने यहां तक लिख दिया है कि भारत में एक, दो, तीन आदि अकों का प्रयोग सर्वप्रथम भास्कर नामक गणितज्ञ ने किया था, जबकि सच्चाई यह है कि भास्कराचार्य का जन्म ही शक सम्वत् १०३६ (वि० स० ११७१, सन् ११११४ ई०) में हुआ था।[1] इसमें पूर्व तो अनेक वैदिक, जैन व बौद्ध गणितज्ञ हो चुके थे और उनका अनुसरण अरब विद्वानों के माध्यम से अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने किया था। जर्मन आलोचक श्लेगल "डेसीमल सीफर" को भारत की देन स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि—

"The decimal cyphers, the honour of which, next to ers the most important of human discoveries, has with the common contact of historical anthorities, been ascribed to the 'Hindus[2]".

प्रो० मेकडानल के अनुसार "न्यूमरीकल फीगर्स" के आविष्कार कर्ता भारतीय थे तथा "डेसीमल सिस्टिम" भारतीयों की देन है। भारत को गणित के क्षेत्र में पाश्चात्य जग का गुरु स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं—

"In Sciences, too, the debt of Europe to India has been considerab le. There is in the first place the great fact that the I dians invented the numerical figures used all over the world, the influence which the decimal system of reckoning dependent on those figures has had not only on mathematics

---

१ – भास्कराचार्य ने अपने जन्म के सम्बन्ध में 'सिद्धान्त शिरोमणि' में लिखा है–
'रस गुण पूर्ण मही सम शक नृपये भवन ममोत्पत्ति' अर्थात् रस=६ गुण=३, पूर्ण=० और मही=१ शाके वर्ष में मेरा जन्म हुआ। अंकानाम वामतोगति के अनुसार इनका जन्म शक सम्वत् १०३६ में हुआ।

२ – Schlegel's History of Litarature, P. P. 143.

but on the progress of civilization, in general, can hardly be over-estimated. During the eighth and ninth centuries the Indian become the teachers in arithmatic and algebra of the Arabs, and through them of the nations of the west. Thus, though we call the latter Science by an Arabic name, it is a gift we owe to India."[१]

डॉ॰ रे ने भी दाशमिक संकेत का आविष्कारकर्ता भारतीयों को ही स्वीकारा है—

"This conclusivety proves that the decimal notation was familiar to the Hindus when the Vyasa Bhasya was Written, i. e Centuries before the first apperance of the notation in the writing of the Arabs or the Greco syrians Intermediaries.[२]

सर मोनियर विलियम्स के अनुसार अरब गणित के क्षेत्र में भारत के ऋणी हैं—

"From them (Hindus) the Arabs received not only their first conceptions of Algebraic analysis, but also those numerical symbols and decimal notations now current every where in Europe, and which have rendered untold Service to the progress of arithmatical Science".[३]

शून्य तथा एक से नौ तक की संख्या भारत से अरबों ने सीखी और अरबों ने यूरोप मे उसका प्रचार किया। इस सम्बन्ध में डब्लू॰ डब्लू॰ हन्टर का कहना है–

"To them (the (Hindues) we owe the invention of the numerical symbol on the decimal Scale. The Indian figures 1 to 9 being abbreviated forms of initial letters of the numerals themselves and the zero, or 0, representing the first letter of the Sanskrit word for empty (Sunya). The Arabs borrowed them from the Hindus, and transmitted them to Europe[४]".

१– Macdonell's History of Sanskrit Literature, P. P. 434.
२ – Dr. Ray – History of Hindu Chemistry, Vol II. PP. 117.
३ – Sir M. Monier Williams. Ancient and Medialval India, Vol I, PP. 376.
४ – W. W. Hunter – "India" (Imperial Gazetter, PP 213.

भारत में गणित की तीनों शाखाएं—अंकगणित, रेखागणित और बीजगणित पल्लवित हुई। इन्हीं तीन शाखाओं के अन्तर्गत स्थिति शास्त्र, गतिशास्त्र, चलन-कलन, द्रवस्थिति शास्त्र आदि गणित की विभिन्न शाखाओं के सिद्धान्तों का निरूपण हुआ।

अंक गणित के बारे में मेनिंग महोदय[१] का कहना है कि अन्य प्राचीन राष्ट्रों की तुलना में हिन्दू लोग अंक गणित की समस्त शाखाओं में विशेष रूप से अग्रणी रहे हैं। हण्टर के अनुसार हिन्दुओं ने बिना किसी विदेशी प्रभाव के अंक गणित व बीज गणित में स्वतन्त्रता पूर्वक उच्च योग्यता प्राप्त कर ली थी[२]। "सूर्य सिद्धान्त" का निर्माण बहुत पहले ही आर्यों ने कर दिया था, जबकि रेखा गणित के ज्ञान के अभाव में "सूर्य-सिद्धान्त" का निर्माण प्रो० केलेस के अनुसार[३] सम्भव ही नहीं है। एल्फिस्टन महोदय का तो यहां तक कहना है कि "सूर्य-सिद्धान्त में वर्णित त्रिकोणमिति की जो पद्धति है, वह मात्र यूनानियों के प्राप्त ज्ञान से बढ़ कर ही नहीं है वरन् उसमें ऐसे साध्य है जिनका आविष्कार यूरोप में गत दो शताब्दियों में ही हुआ है।"[४] यही हाल बीज गणित के क्षेत्र में है। एल्फिस्टन के अनुसार आर्य भट्ट मात्र डायफेन्टस् से श्रेष्ठ ही नहीं था वरन् उसके अनुयायियों ने वर्तमान के बीज गणित वेत्ताओं को भी बहुत अधिक प्रभावित किया है।[५]

इस प्रकार अंक गणित, बीज गणित और रेखा गणित के क्षेत्र में भारतीय उपलब्धियों का लम्बा इतिहास है। प्रस्तुत पुस्तक में वैदिक काल की गणितीय उपलब्धियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि उपलब्धियों के इस लम्बे इतिहास के बीज वहीं पर अंकुरित हुए है। यहां इस पुस्तक में लेखक का मुख्य उद्देश्य गणित के गूढ़तम सिद्धान्तों की व्यापक खोज कराना नहीं रहा है वरन् तत्कालीन उपलब्धियों का परिचय कराना रहा है, इस तरह मेरा यह निबन्ध सैद्धान्तिक न होकर ऐतिहासिक है।

पुस्तक को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय है साथ ही यह बताने का प्रयास किया गया है कि आर्यों को गणित की आवश्यकता किस रूप में और क्यों थी? दूसरे अध्याय में

१ – Manning – Ancient and Mediaeval India, Vol I, PP. 374.
२ – W. W. Hunter – 'India' (Imperial Gazetteers), PP. 219.
३ – Prof. Wallace – Mill's India, Vol II PP. 150.
४ – Elphinstone History of India, PP. 129.
५ – Elphinstone History of India, PP. 131.

अंक गणित मे सम्बन्धित सिद्धान्तो के विवरण हैं। तीसरे मे रेखा गणित के सिद्धान्तों-साध्य एवं रचनाओं (Theorams & constructions) तथा चतुर्थ अध्याय में बीजगणित के मूलभूत सिद्धान्तों (Fundamental Principles) का वर्णन किया गया है। अन्तिम अध्याय मे इस भ्रान्ति का निवारण किया गया है कि आर्य लिखना नही जानते थे। प्रामाणिक सामग्री के आधार पर यह बताया गया कि आर्य ऋग्वैदिक-काल (पूर्व वैदिक-काल) मे ही लेखन कला (Art and Writing) से परिचित थे।

वैदिक साहित्य मे गणित विषयक मन्त्रों को टटोलने की प्रेरणा मुझे स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पं० रघुनन्दन कृत "वैदिक सम्पत्ति" आदि ग्रन्थो का अध्ययन करते समय मिली। जब सम्पूर्ण वेद वाङमय का पारायण किया तो इसमें गणितीय सिद्धान्तो का अक्षय भण्डार मिला, किन्तु समस्त वाङमय की थाह लेना मेरे लिए सम्भव नही था। इसी कारण मैंने अपने सामान्य अध्ययन के आधार पर जो कुछ मेरी अपनी दृष्टि से प्रस्तुत किया है वह पाठको के सामने प्रस्तुत है। इस पुस्तक की रचना मे मैने अब तक प्रकाशित अनेक विद्वानो के ग्रन्थों से सहायता ली है, मै उन सबका कृतज्ञ हूं।

इसके अतिरिक्त इस कार्य को सम्पन्न कराने मे स्व० श्री दुर्गालाल श्री माथुर, भू० पू० अधीक्षक पुरातत्व एवं संग्रहालय उदयपुर, प० सुधाकर जी, बेंगलोर, डा० रामचन्द्र व्यास, गणित विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर, श्याम सुन्दर व्यास, पुस्तकालयाध्यक्ष, सरस्वती भवन पुस्तकालय, उदयपुर, डॉ० बृजमोहन जावलिया, उदयपुर आदि का जो सहयोग रहा, उसके लिए मैं उन्हे धन्यवाद अर्पित करता हूं। गणित के मूर्धन्य विद्वान डॉ० वी. एस, महाजनी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं, जिन्होने पुस्तक का प्राक्कथन लिखा। अपने आदरणीय मित्र डॉ० भवानीलाल भारतीय ने कुछ शब्द लिखने की जो अनुकम्पा की, उसके लिए भी मैं उनका ऋणी हूं। जिनके चरणो मे बैठकर मैने वेद एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन किया उन परम कृपालु परम पूज्य पिताजी प० गोवर्धन जी व्यास को मात्र कृतज्ञता ज्ञापित कर मै उऋण नहीं हो सकता, यह तो उन्ही की प्रेरणा का पत्रं-पुष्पं है। मैं अपने गुरुदेव डॉ० रामप्रसाद व्यास के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हू जो शोध खोज के क्षेत्र में निरन्तर मेरे प्रदर्शक बने रहे। अन्त मे मैं अपने मित्र श्री उमराव सिंह जी मंगल के प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूं जिनके प्रयत्नो से ही यह पुस्तक सुव्यवस्थित रूप से पाठकों तक पहुँच सकी है।

वेद निलयम्
६२०, रसाला रोड,
जोधपुर।

मयंक विद्यावाचस्पति

संकेताक्षर तालिका

१. अष्टा०	अष्टाध्यायी (पाणिनी कृत)
२. अ० सं० । अथर्व० सं०	अथर्ववेद संहिता
३. आ० ज्यो०	आर्च ज्योतिष
४. आ० शु० सू०	आश्वालयन शुल्व सूत्र
५. ऋ० सं०	ऋग्वेद सहिता
६. का० शु० सू०	कात्यान शुल्व सूत्र
७. का० सं०	काठक संहिता
८. कृष्ण यजु०	कृष्ण यजुर्वेद
९. छा० उ०	छान्दोग्य उपनिषद
१०. तैत्त० ब्रा०	तैत्तरीय ब्राह्मण
११. तै० सं०	तैत्तरीय संहिता
१२. पा० ग० इ०	पाटी गणित का इतिहास
१३. मै० सं०	मैत्रायणी संहिता
१४. यजु० सं०	यजुर्वेद संहिता
१५. या० ज्यो०	याजुष ज्योतिष
१६. ला० श्रौ० सू०	लाटायन श्रौत सूत्र
१७. वे० ज्यो०	वेदाङ्ग ज्योतिष
१८. बृहद् उ०	बृहदारण्यक उपनिषद
१९. श० ब्रा० । शत० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
२०. श्रौ० सू०	श्रौत सूत्र

अध्याय | | | १

विषय–प्रवेश

वेद शब्द की व्युत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'ज्ञान' (विद् ज्ञाने) । अतः शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर 'वेद' का अर्थ होगा 'ज्ञान संग्रह' ! लेटिन भाषा की एक धातु है, 'विडर' (Vider), जिससे आंग्ल भाषा का शब्द "विजन" (Vision) बना है । "विजन" का अर्थ है, "दर्शन" । आंग्ल भाषा-भाषी इसी शब्द को वेदों हेतु प्रयुक्त करते है । इन दोनों शब्दों के आधार पर यदि हम वेदो की परिभाषा करें, तो कहेंगे कि " वेद साक्षात्कार किए हुए ज्ञान का संग्रह है ।" परिभाषा के दो शब्द ज्ञान व साक्षात्कार विशेष महत्त्व के हैं । पहला शब्द है 'ज्ञान' ! प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ज्ञान क्या है ? कैसे व कहां से प्राप्त होता है ? क्या मानव ही ज्ञान का सृजक है ? इन प्रश्नों का सामान्य उत्तर यही है कि ज्ञान मानवीय सृष्टि की भौतिक व आध्यात्मिक जानकारी को कहते है । इसका निर्माता मानव नही व न ही पुस्तकें ज्ञान की प्राप्ति का मूल स्थान है । हाँ, मानव पुस्तक लिखता है, उसे पढ़कर हम ज्ञान प्राप्त करते है, लेकिन स्वयं पुस्तक के लेखक ने भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से ज्ञान प्राप्त किया है । इस प्रकार यदि हम इस ज्ञान की परम्परा का मूल ढूंढने का प्रयास करें तो हमे उत्तरोत्तर अपने पूर्व काल की ओर बढ़ना होगा । अन्ततोगत्वा हम मानवी सृष्टि के आदि तक पहुँच जाते है अर्थात्, आदि मानव तक पहुँच जाते हैं । लेकिन क्या वह आदि मानव ही ज्ञान का सृष्टा था । नही ! यदि वह सृष्टा होता तो निश्चित रूप से परवर्ती मानव भी ज्ञान का सृष्टा होता । तब प्रश्न यह उठता है कि जब आदि मानव भी ज्ञान का सृष्टा नही था, तो उसे ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ ? इस शंका का समाधान परिभाषा के दूसरे शब्द 'साक्षात्कार' से होगा । आदि मानव ने ज्ञान के साक्षात् दर्शन किए थे । सृष्टि का निर्माता परमपिता परमेश्वर है । उसी ने मानव जाति को भी उत्पन्न किया ! मानव को चिन्तन व मनन

की शक्ति प्रदान की । अतः आदि मानव समुदाय ने चिन्तन किया व प्रभु से प्रार्थना की कि वह उन्हें ज्ञान दे । प्रभु ने उन्हे ध्यानावस्था में ज्ञान के दर्शन करवा दिये । ज्ञान से साक्षात्कार करने वाले आदि ऋषि चार थे— अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा ।

इन चारो ऋषियो ने उस प्रभुदत्त ज्ञान को मानवी भाषा में व्यक्त किया । इन चारों ऋषियों द्वारा अभिव्यक्त ज्ञान को अन्य ऋषियों ने भी ग्रहण करना चाहा । अतः उन्होने भी ध्यान मग्न हो ज्ञान का साक्षात्कार किया । उन्होंने पूर्ववर्ती ऋषि-चतुष्टय के ज्ञान की व्याख्या अलग-अलग मन्त्रो के माध्यम से प्रस्तुत की । ये ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा कहलाए, क्योकि इन्होंने ज्ञान के दर्शन किए । दर्शन करने के कारण ही उन्हे ऋषि कहा जाता है । "ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्श" [१] अर्थात् ज्ञान का साक्षात् दर्शन करने वाला ही ऋषि है ।

ध्यानावस्था में बैठे हुए ऋषि को ज्ञान का दर्शन कराने वाला वह परमात्मा ही है । अतः उसी से प्राप्त ज्ञान को ऋषियो ने मन्त्रबद्ध किया व यह मन्त्रो का संग्रह 'वेद' कहलाया । वेदो मे संग्रहीत ज्ञान प्रभुदत्त है, अतः वेदों को ईश्वर कृत (अपौरूषेय) माना जाता है । स्वयं वेदो में भी वेदो को ईश्वर कृत कहा गया है ।[२] ऋषियों द्वारा प्रस्तुत समस्त मन्त्रो को सुविधा के अनुसार चार भागों में विभाजित कर दिया गया, इससे वेद चार हो गए— ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद । ये चारों वेद संहिताएं ही ज्ञान का मूल स्रोत हैं । ज्ञान का चूंकि कोई अन्त नही, अतः वेदों के लिए भी कहा गया है—"अनन्ता वै वेदा" (तै० ब्रा० ३-१०-११-३) । आरम्भ में इस ज्ञान भण्डार को तीन भागो में *बांटा गया था । वह वेद त्रयी कहलाता था,* लेकिन कालान्तर में इसे चार भागो मे कर दिया गया । इन चारो वेदों का संक्षिप्त परिचय देना समीचीन होगा ।

ऋग्वेद संहिता— संहिता साहित्य मे ऋग्वेद प्राचीनतम संहिता है । कुछ *विद्वानो का यह भी मत रहा है कि ऋग्वेद के दस मण्डलो मे से आरम्भिक ६ मण्डल*

---

१ – निरूक्तम् २.११, दुर्गाचार्य कृत वृत्ति में इसकी निम्न व्याख्या है—
ऋषिदर्शनात् । पश्यति ह्यासौ सूक्ष्मानप्यर्थान् । स्तोमान्ददर्शत्योपमन्यव ।

२ – तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।। — यजुर्वेद ३१।७ ।
अर्थात्— उस सर्व प्रयोना यजनीय परमेश्वर से ऋचायें (ऋग्वेद), साम (सामवेद), प्रकट हुआ, उसीसे छन्द (अथर्ववेद) उत्पन्न हुआ तथा उसी परमेश्वर से यजुः (यजुर्वेद) उत्पन्न हुआ ।

प्राचीन हैं व दशम् मण्डल इसमें बाद में जोड़ा गया है। ऋग्वेद में विभिन्न देवताओं की स्तुतियों का संकलन है। ये स्तुतियां अत्यन्त रोचक व भावमय है। समस्त स्तुतिया पद्यबद्ध हैं। काव्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी यह एक उच्चकोटि का काव्य ठहरता है। इन स्तुतियो में से उषा की स्तुति का सूक्त तो अत्यन्त मनमोहक व रमणीय है। उषा के चित्रण में ऋषि की कल्पना ने जो उड़ान ली है, वह अत्यन्त हृदयग्राही है। ऋग्वेद मे गंगा, यमुना, सिन्धु, सुवास्तु, गोमती (गोमल), आदि उत्तरी मैदानी भाग की नदियों का भी नामोल्लेख हुआ है। जिनके आधार पर तत्कालीन आर्य सभ्यता का विस्तार क्षेत्र ज्ञात किया जा सकता है।

यजुर्वेद—जैसे ऋग्वेद उपासना प्रधान संहिता है, वैसे यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान संहिता है। इसमे विभिन्न यज्ञो से सम्बन्धित मन्त्रों व यज्ञों का विधान प्रस्तुत किया गया है। यजुर्वेद के दो प्रकार हैं– प्रथम शुक्ल यजुर्वेद व द्वितीय कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयी सहिता भी कहा जाता है। शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ उपलब्ध हैं— काण्व शाखा व माध्यन्दनीय शाखा। इसी प्रकार कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाए है— काठक संहिता, कपिष्ठल सहिता, मैत्रेयी संहिता व तैत्तिरीय संहिता। शुक्ल यजुर्वेद गद्य–पद्यमय रचना है, जबकि कृष्ण यजुर्वेद पद्यमय रचना है। शुक्ल यजुर्वेद चालीस अध्यायो में विभक्त है। इसका चालीसवाँ अध्याय ईशोपनिषद है। इस अध्याय का प्रारम्भ "ईशावास्यम् इदम्" से होता है। इसी कारण इसे ईशावास्योपनिषद् अथवा ईशोपनिषद् कहा गया है। इस अध्याय का कर्मकाण्ड मे कोई सीधा सम्बन्ध नही, प्रत्युत यह अध्याय अध्यात्म विषय से सम्बन्धित है।

सामवेद — साम का अर्थ है प्रीति, प्रीतिकार व गान[१]। इस वेद मे प्रभु के गुणो का प्रीति पूर्वक गान का विधान प्रस्तुत किया गया है। इसीसे इसे सामवेद संज्ञा प्रदान की गई है। यज्ञों मे भी सस्वर मन्त्रोचारण का आदेश है–"ना साम यज्ञोर्भवति"[२] अर्थात् बिना साम के यज्ञ नही होता। इस दृष्टिकोण से सामवेद का अपना विशिष्ट महत्व है। सामवेद दो भागो मे विभक्त है-पूर्वआर्चिक व उत्तरार्चिक। इसमे कतिपय मन्त्रों की पुनरावृत्ति भी हुई है, यदि उन्हें निकाल दिया जाय तो इसकी मंत्र संख्या १५४९ रह जाती है। इनमें से भी ७५ मन्त्रो के अलावा शेष १४७४ मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। वर्तमान में सामवेद की तीन शाखाएं उपलब्ध है। पौराणिक साहित्य में सामवेद की सहस्र शाखाओं का उल्लेख है। वर्तमान मे प्राप्य तीन शाखाएं– कौथुम शाखा, राणायनीय शाखा व जैमिनीय शाखा है।

---

१ – वैदिक साहित्य – पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, पृष्ठ १०८–११०।
२ – शतपथ ब्राह्मण।

अथर्ववेद – अथर्ववेद के नामकरण पर प्रकाश डालते हुए पं० रामगोविन्द त्रिवेदी ने लिखा है कि "अथर्वा"[1] ऋषि द्वारा परिदृष्ट व आविष्कृत होने के कारण इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा।[2] यह विज्ञान काण्ड प्रधान रचना है। इसमें आयुर्वेद से सम्बन्धित अनेकों व्याधियो व उनके उपचार की विधि बतलाई गई है। साथ ही उसमें राजनीति शास्त्र व समाजशास्त्र आदि से सम्बन्धित अनेक नियमो का भी उल्लेख हुआ है। पाश्चात्य विद्वान भ्रान्तिवश इसे जादू, टोनो व अन्धविश्वासों से परिपूर्ण मानते हैं। गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह विज्ञान काण्ड प्रधान रचना है। इसमें भी अनेक मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं।

इन वेद संहिताओं का बाह्य रूप देखने से प्रतीत होता है कि वेद मात्र ईश्वर व अध्यात्म विषयक ग्रन्थ हैं। क्योंकि एक वेद प्रार्थनाऐं सिखाता है तो दूसरा ईशोपासना का गान विधान प्रस्तुत करता है, अन्य कर्म काण्ड व विज्ञान काण्ड से सम्बन्धित हैं। लेकिन इसी आधार पर संहिता साहित्य को आर्यों की धर्म पुस्तक कह देना हमारी भूल होगी। वैदिक साहित्य मे प्रसंगवश समस्त मानवीय ज्ञान के सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं, यजुर्वेद मे कहा है —

'तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत, ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥[3]

इस मन्त्र का भाष्य इस प्रकार किया गया है— " जिसका कभी नाश नही होता, जो सदा ज्ञान स्वरूप है, जो सदा सुख स्वरूप व सुख देने वाला है, इन गुणों (सत्, चित्, आनन्द) से युक्त जो सर्वव्यापी है उसी ईश्वर ने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद की रचना की। उक्त मंत्र मे 'जज्ञिरे' व 'अजायत' बहुवचन में है, अतः वेदों को भी अनेक विद्याओ से युक्त मानना स्पष्ट होता है।

इन वेद संहिताओ मे रोपित ज्ञानांकुरों की परवर्ती वैदिक साहित्य मे पूर्ण व्याख्या हुई है। वेद के प्रत्येक विषय की व्याख्या के लिए पृथक-पृथक ग्रन्थो का निर्माण हुआ। दार्शनिक तत्त्वो की व्याख्या के लिए उपनिषदों का निर्माण किया गया, तो यज्ञों का विधान प्रस्तुत करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थो की रचना हुई। सामाजिक नियमो का विधान गृह्य सूत्रों, धर्म सूत्रों व स्मृतियो में किया गया। इसी प्रकार चार उप

---

१ – यहाँ अथर्वा के स्थान पर अंगिरा होना चाहिए।
२ – वैदिक साहित्य – रामगोविन्द त्रिवेदी, पृष्ठ ११०।
३ – यजु० सं० ३१।७।

वेद— आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थवेद व गांधर्ववेद बने। शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, व्याकरण व छन्द नामक छः वेदांगों का निर्माण किया गया व चार उपांग – पुराण, न्याय, मीमांसा व धर्म बने। इस समस्त साहित्य को "वैदिक साहित्य" नाम से ही अभिहित किया जाना चाहिये, क्योंकि इसकी रचना का मूल उद्देश्य वैदिक ज्ञानाकुरों को पल्लवित करना ही रहा। कुछ सूत्रकारो ने तो ब्राह्मणो व उपनिषदों को वेद ही कह डाला है।[1]

लेकिन वह उचित नही। इस समस्त साहित्य के लिए तो "वैदिक साहित्य", संज्ञा ही उचित प्रतीत होती है।

इस समस्त वैदिक साहित्य के अवलोकनोपरान्त इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि जिन विषयो का अध्ययन वर्तमान में हो रहा है, वे समस्त वैदिक काल मे आविष्कृत हो चुके थे। इसके अतिरिक्त कुछ विषय तो ऐसे है, जिनका अध्ययन आज नही हो रहा है। वैदिक कालीन अध्ययन के विषयों की एक सूची हमें छन्दोग्य उपनिषद में भी प्राप्त होती है। छन्दोग्य उपनिषद की एक आख्यायिका मे सनत्कुमार नारद से पूछते हैं कि हे नारद! तुम क्या पढ़े हो? इस पर नारद प्रत्युत्तर देते हुए कहता है —

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमियजुर्वेद सामवेदमाथर्वणं
चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चम वेदानां वेदं पित्र्यम्
राशि दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां
भूत विद्यां क्षत्र विद्यां नक्षत्र विद्यां
सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥[2]

हे भगवन्! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद चौथा अथर्ववेद पांचवा इतिहास व पुराण, वेदो का वेद अर्थात् व्याकरण, पितृ विद्या, राशि विद्या (गणित), देव विद्या, निधि विद्या (Mining Engineering), तर्क शास्त्र, ब्रह्म विद्या, भूत विद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्र विद्या (Astrology), सर्प विद्या, देवजन विद्या इतनी विद्याएं पढ़ा हू।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कितनी उच्चकोटि की शिक्षा की व्यवस्था वैदिक काल में थी। कितनी विद्याओं का अध्ययन आर्य करते थे। उक्त आख्यायिका मे जिन विषयो का उल्लेख किया गया है, उनमे गणित भी है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल

---

१ – आश्वालयन श्रौत सूत्र, २४।१।३१। व जैमिनीय मीमांसा २।१।३३।
२ – छा० उ०, ७।१।२।

मे गणित विद्या का पर्याप्त प्रचार था। अन्य विषयों की भांति गणित विद्या के सम्बन्ध मे भी वेदों में संकेत मिलते है। इनका विशद विवेचन परवर्ती वैदिक साहित्य में भी हुआ है।

गणित विद्या का सम्बन्ध गणना से है। गणना की प्रधानता के कारण इस विद्या को गणित विद्या के नाम से अभिहित किया जाता है।

गणित विद्या का हमारे भौतिक जीवन के साथ अभिन्न सम्बन्ध है। सामान्य से सामान्य व्यवहार में हमें गणना की आवश्यकता प्रतीत होती है। यथा— अमुक व्यक्ति के पांच मकान, आठ पुत्र व पन्द्रह गायें हैं। इसमें पांच, आठ व पन्द्रह गणना-वाची शब्द है। यह तो अत्यन्त सामान्य व्यवहार की बात हुई। यदि हम जीवन के अन्य पहलुओं को देखें तो ज्ञात होगा कि जीवन के प्रायः प्रत्येक पहलू मे गणित का प्रयोग होता है। आर्यों के जीवन का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उनके जो व्यवहार थे, उनमे गणित का उपयोग होता था।

सर्व प्रथम निर्माण कार्य को ही लीजिये। आर्य रहने के लिए भवनो का निर्माण करते थे। भवन निर्माण में अंक गणित व रेखा गणित दोनों की समान रूप से आवश्यकता पड़ती थी। उस समय सामान्य कोटि के भवन ही नहीं बनते थे वरन् १००–१०० दरवाजों व भुजाओं के गृहों का निर्माण होता था। उसका उल्लेख हमें ऋग्वेद में मिलता है, यथा —

> यथा वः स्वाहाग्नये दा शेम परीलाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।
> तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥[1]

> अधा मही न आयस्यना धृष्टो नृपीतये। पूर्भवा शतभुजि ।[2]

> क्वत्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुराचित्।
> बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्र' द्वारं जगमा गृहंते ॥[3]

उक्त मन्त्रो में अवतीर्ण पद 'शत पूर्भिरायसी भिर्नि पाहि' 'पूर्भवा शत भुजी' 'सहस्र द्वारं जगमा गृहंते' से आर्यों के विशाल गृहो का आभास होता है। इन

---

१ – ऋग्वेद सं०, ७।३।७।
२ – वही, ७।१५।१४।
३ – ऋग्वेद सं०, ७।८८।५।

भवनो के बनाने में समिति (Symmetry) का भी ध्यान रखा जाता था, जिसमें रेखागणितीय ज्ञान की विशेष आवश्यकता रहती है । इन भवनों में १००–१०० द्वार व भुजाएं होती थी । इसके लिए उन्हे पूर्व ही एक योजना बनानी पड़ती होगी । उन द्वारों का भी अलग-अलग नाप होता था । उसी के अनुसार स्थान छोड़ना पडता था । उन द्वारो के लिए कपाट भी बनाए जाते होंगे । उनके भी नाप आदि में उन्हें गणित की आवश्यकता रहती थी ।

निर्माण कार्यों में रथ का उल्लेख भी ऋग्वेद में हुआ है —

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयंती ।
आत्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसोये ॥[1]

इन रथों के निर्माण में उन्हे वृत्त आदि की गणित की आवश्यकता रहती थी । वृत का क्षेत्रफल, परिमिति, व्यास आदि का उपयोग किए बिना रथो के पहियो का निर्माण नही हो सकता था । इसी प्रकार अन्य कई निर्माण कार्यों का उल्लेख भी वेदों में हुआ है । जिसमे कि गणित की आवश्यकता रहती है ।

आर्यों के आर्थिक जीवन में भी गणित का उपयोग होता था । वे मुख्य रूप से कृषि कर्म करते थे, उसमें खेतो को नापने, जोतने आदि में वे गणित का उपयोग करते थे । उनका व्यापार भी काफी बढा-चढा था । व्यापार मे वे निष्क नामक मुद्रा का उपयोग करते थे । इसका उल्लेख ऋग्वेद मे निम्न प्रकार से हुआ है —

१ – शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कांञ्छतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवां असुरस्य गोना दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥[2]

२ – अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयोरुद्र त्वदस्ति ॥[3]

३ – आ श्वैत्रेयस्य जंतवोद्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवोंबृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥[4]

---

१ – ऋग्वेद सं०, ३।६१।२ ।
२ – वही, १।१२६।२ ।
३ – वही, २।३३।१० ।
४ – वही, ५।१६।३ ।

४ – निष्कं या घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परिदद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥[1]

कुछ विद्वान निष्क को गहना विशेष मानते हैं, लेकिन निष्क वास्तव में गहना नहीं वरन् मुद्रा ही थी। इस निष्क नाम की मुद्रा का प्रचलन पाणिनी के काल तक था। पाणिनी की अष्टाध्यायी में मुद्रा के रूप में इसका उल्लेख मिलता है, यथा— असमासेनिष्कादिभ्यः।[2] इसके साथ ही पाणिनी ने यह भी कहा है कि जब किसी वस्तु का निष्क के हिसाब से मूल्य बताना हो तो नैष्किक, द्विनैष्किक, त्रिनैष्किक आदि कहा जाय ("द्वि त्रिपूर्वान्निष्कात")[3] जिस आदमी के पास १०० निष्क होते हैं उसे नष्कशतिक व जिसके पास हजार निष्क होते उसे नैष्कसाहस्रिक कहते थे। (शतसहस्रान्ताच्चनिष्कात्)[4] इससे स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में उल्लिखित निष्क एक मुद्रा ही थी। इसके अलावा वैदिक काल में शतमान नामक मुद्रा का भी प्रचलन था, जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में हुआ है यथा—

तस्यै त्रीणि शतमानानि हिरण्यानि दक्षिणा। तानि ब्राह्मणें ददाति न वै ब्रह्मा प्रचरति न स्तुते न श सत्यपथ, स यशो न वै हिरण्येन कि घन कुर्वन्त्यथ तद्यशस्तस्मा त्रीणि शतमानानि ब्रह्मणे ददाति ॥[5]

इसी प्रकार सुवर्ण नामक एक अन्य मुद्रा का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में[6] मिलता है। इन मुद्राओं का प्रचलन उनकी व्यापारिक समृद्धि को सूचित करता है। व्यापार में गणित का उपयोग होता ही है। इसके अतिरिक्त ये लोग नौकर भी रखते थे व वेतन भी देते थे।[7] इन सेवकों को वेतन मासिक अथवा दैनिक देते होंगे। जिसमें उन्हें हिसाब करना होता था।

आर्य अपनी आयु की भी गणना करते थे। यजुर्वेद में कहा गया है— जीवेम शरदः शतम्।[8] इससे स्पष्ट है कि वे अपनी आयु का भी हिसाब रखते थे, जिससे कि उन्हें गणित की आवश्यकता थी।

---

१ – ऋग्वेद सं०, ८।४७।१५।
२ – अष्टा० ५।१।२६, २०, ३०, ३४; ५।४।१; ५।२।१२०।
३ – अष्टा० ५।१।२०।
४ – अष्टा० ५।१।११६।
५ – शत० ब्रा० ५।५।५।१६।
६ – शत० ब्रा० १२।२।३।२।
७ – ऋग्वेद ६।१०३।१।
८ – यजु० सं० ३६।२४।

आर्यों के इन सामान्य व्यवहारों मे हमने देखा कि गणित का अत्यन्त उपयोग रहता था। लेकिन इनके अतिरिक्त उनके जीवन के दो ऐसे पहलू थे, जिनमें अत्यन्त उच्च गणित की आवश्यकता पड़ती है। पहला था ज्योतिष व दूसरा वेदी निर्माण। ज्योतिष के क्षेत्र में आर्य काफी बढ़े-चढ़े थे। ज्योतिष शास्त्र के समस्त मूलभूत सिद्धान्तो का उन्हे ज्ञान था। वेदों मे स्थान स्थान पर ज्योतिष के सिद्धान्तो का उल्लेख हुआ है। बारह मास, सात वार, सताईस नक्षत्र, सूर्य ग्रहण, सूर्य के प्रकाश के विभिन्न रग, ग्रह आदि का उल्लेख वेदों मे हुआ है।[1] इन समस्त ज्योतिष सम्बन्धी क्रियाओं में गणित का उपयोग करना पड़ता है। विशेष रूप से 'ज्योतिष में रेखा गणित का काम पड़ता है, जितने ग्रह, उपग्रह हैं, उनकी सूर्य आदि से दूरी और मिलाप बताया जाता है।'[2] उनके गति पथ के निर्माण मे व वेग की गणना मे गणित का उपयोग होता है। इस सम्बन्ध मे उनकी गति व स्थिति ज्ञात करने में गति शास्त्र (Dynamics), स्थिति शास्त्र (Statics), त्रिकोणमिति (Trigonometry), आदि गणित की शाखाओं का उपयोग करना होता है।

यज्ञादि कर्मों के लिए जिन हवन कुण्डों (Altar) का निर्माण वे करते थे, उनमें भी उन्हे गणित के विभिन्न पहलुओं की सहायता लेनी होती थी। ये हवन कुण्ड कोई सामान्य कोटि के व एक ही प्रकार के नही होते थे, वरन् ये उच्च गणितीय सिद्धान्तों पर आधारित थे। विभिन्न प्रकार की वेदियो का निर्माण उस काल मे किया जाता था। चतुरस्येन, वक्रपक्ष, व्यस्तपुच्छ, कंकचित, अजलचित, प्रोगाचित, प्रमाचित आदि कई आकारो-प्रकारों की वेदियो का उल्लेख वैदिक साहित्य में हुआ है।[3] ये समस्त "यज्ञ कुण्ड" रेखा गणित पर आधारित होते थे व एक न एक रेखा गणित के साध्य होते थे।[4] इनकी लम्बाई, चौडाई, गहराई, गोलाई आदि में विभिन्न नापों की व्यवस्था थी। जिसका वर्णन आगे के अध्यायों मे किया जायगा।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों का जीवन अत्यन्त समृद्ध और सम्पन्न था व उसमे उन्हें प्रायः हर कार्य में गणित की आवश्यकता रहती थी। वैसे तो गणितीय सूत्र हमें सर्वत्र वैदिक साहित्य में बिखरे हुए मिलते हैं, पर इस गणित विद्या के

---

१ – ज्योतिष सम्बन्धी विस्तृत विवरण हेतु देखिए "प्रिय रत्न आर्य रचित" वैदिक ज्योतिष।
२ – रघुनन्दन शर्मा कृत वैदिक सम्पत्ति।
३ – इन प्रकारों के सम्बन्ध में कृष्ण यजुर्वेद द्रष्टव्य है।
४ – रघुनन्दन शर्मा कृत वैदिक सम्पति।

निमित्त छः अंगों में से एक पूरा अंग रखा गया था। जो कि ज्योतिष कहलाता है। ज्योतिष के मुख्य रूप से दो भाग होते हैं – गणित व फलित। वेदांग ज्योतिष गणित पर आधारित है। उस समय गणित का उपयोग तो किया ही जाता था, पर साथ ही उसे विशेष महत्त्व दिया जाता था। गणित का महत्त्व बताते हुए कहा गया है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥[1]

अर्थात् – जैसे मयूर के मस्तक पर शिखा (शोभायमान होती) है व सर्पमणि (अत्यन्त महत्त्वपूर्ण) है वैसे ही वेदांग शास्त्रों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द व ज्योतिष) में गणित श्रेष्ठतर व महत्त्वपूर्ण है।

---

१ – वे० ज्यो०, श्लोकांक ४।

अध्याय || २

अंक गणित

वैदिक साहित्य में दो प्रकार की ज्ञान धाराओं का उल्लेख हुआ है — प्रथम-विद्या दूसरी अविद्या। मानवीय ज्ञान की अध्यात्म विषयक (Spiritual) धारा की गणना विद्या के अन्तर्गत की जाती थी व अन्य भौतिक विषयों की (Material Sciences) गणना अविद्या में की जाती थी। इन दोनों ही ज्ञात धाराओं में पारंगत व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी माना जाता था।[१] विद्या व अविद्या को क्रमशः परा विद्या व अपरा विद्या भी कहा जाता था। अपरा विद्या (लौकिक ज्ञान) को परा विद्या का सहायक अंग माना जाता था।[२] इसकी पुष्टि छान्दोग्य उपनिषद्[३] की आख्यायिका से भी होती है। जब नारद सनत्कुमार के पास आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से गया तो सनत्कुमार ने पूछा कि तुम लौकिक विद्याएं (अविद्या या अपरा विद्या) पढ चुके हो अथवा नहीं। इस पर नारद ने अपनी पठित लौकिक विद्याओं को गिनाया जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका है। इस आख्यायिका में गणित की गणना अपरा विद्याओं (Material Sciences) में हुई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गणित का अध्ययन अध्यापन उस समय आवश्यक रूप से होता था। गणित विद्या के तीन विभाग हैं— अंक गणित (Arithmatic), रेखा गणित (Geometry) व बीज गणित (Algebra)। इन तीन प्रमुख शाखाओं के आधार पर ही गणित की अन्य शाखाएं स्थिति शास्त्र (Statics), गति शास्त्र (Dynamics),

---

१ – विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ — यजु० सं० ४०।१४।

२ मुण्डकोपनिषद् १।१।३।५।

३ – छा० उ० ७।१, १।२।

द्रव स्थिति शास्त्र (Hydro Statics), त्रिकोण मिति(Trignometry),खगोलीय, त्रिकोण मिति(Spherical Trigonometry), चलन कलन (Calculus)आदि पल्लवित हुई है। गणित के मूलभूत सिद्धान्त उक्त तीन शाखाओ में ही निहित है। प्रस्तुत अध्याय मे वैदिक काल मे विकसित अंक गणित पर प्रकाश डाला जायगा।

अंक गणित का शाब्दिक अर्थ है अंक गणना विज्ञान ! अंक शब्द की व्युत्पत्ति 'अकि चिह्ने' धातु से हुई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अंक का अर्थ चिह्न बनाना है। प्रारम्भ मे अंको के लिए विभिन्न प्रकार के चिह्न बनाये जाते थे। पुनः उन चिह्नों को गिन लिया जाता था, इसी कारण इस गणितीय शाखा को अंक गणित का नाम दिया गया। चिह्न के रूप मे रेखा भी बनाई जाती थी। रेखा से ही लेखा शब्द बना, क्योंकि संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'र से ल' बन जाता है।[1] अतः इन चिह्नों की गणना को लेखा (हिसाब) भी कहा गया। यह लेखे की पद्धति प्राचीन काल में ही नही वरन् वर्तमान मे भी विद्यमान है। वर्तमान में देवनागरी आदि अंकों से अनभिज्ञ व्यक्ति [प्रायः दूध बेचने वाले, पानी भरने वाले आदि] मात्र रेखाएँ ही बनाते हैं व उन रेखाओ को एक निश्चित तिथि पर गिन लेते हैं। इस क्रिया में मूल कार्य गणना ही है। इन गणना सूचक शब्दों का जो प्रयोग प्रायः देखा जाता है इनका निर्माण भी भाषा के साथ ही हो गया था। इस सम्बन्ध मे प० सुधाकर द्विवेदी की मान्यता है कि "इस संसार मे व्यवहार के लिए जिस शब्द से बने, उसके पहले जो ध्यान देकर विचार करो तो एक, दो, तीन ···· के समझाने के लिए पहिले इन्ही शब्दों के अंक बने होगे। बच्चे के गर्भ में आते ही एक दो, ···· " महीनों की गिनती होने लगती है।[2]

वास्तव में अत्यन्त सामान्य से सामान्य व्यवहार में गणनावाची शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। यथा :- अमुक कार्य में हमे एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है, और अमुक कार्य मे दो, कही तीन और कही इसी प्रकार एक से अधिक की। व्यक्तिगत सेवा सहायता के लिए एक सेवक, आक्रमणकारी कार्य के लिए अथवा सरक्षणात्मक कार्य के लिए एक सेना की, जिसमें सहस्त्रों व्यक्ति आवश्यक होते हैं। जब हम अल्प सख्यक वस्तुऐं और व्यक्तियों में उसी राशि की कुछ और वस्तुएँ मिलाते है, तब वह बढती है, जब उसमें से कुछ क्षय हो जाता है, तब वह घटती है, उसका उतना भाग कम हो जाता है। इस प्रकार अकगणित, संख्याओं का वह विज्ञान है, जिसे योग, शेष, गुण एवं भाग के चार प्रस्थानो में देखा जाता है।[3] वास्तव में इस प्रकार

---

१ – रलयोर्डलयोश्चैव शसयोर्बवयोस्तथा।
वदन्त्येवाञ्च सावर्ण्यमलंकारविदो जनाः॥

२ – पाटी गणित का इतिहास, पृष्ठांक १।

३ – अलगूराय शास्त्री कृत 'ऋग्वेद रहस्य' पृ० १५२–५३।

को चतुर प्रस्थानीय अंक गणना की विशेषता के कारण ही इस विषय को अंक गणित कहते हैं। इसकी आवश्यकता मानव को आरम्भ से ही प्रतीत हो गई थी। अतः भाषा का निर्माण होने के साथ ही अंकों के हिसाब से संबधित शब्द भी बन गये थे।

अंक गणित मे मूल अंक १ से ९ तक ही माने गये है। शून्य (०) को अंक नही माना जाता। यद्यपि इसी की सहायता से १०, २०, ३०, ... १००, १०००, आदि संख्यायें लिखी जाती हैं। शून्य को यदि अंक न भी माना जाय पर वह एक अंक द्योतक चिह्न तो है ही। इस प्रकार कुल दस चिह्न संख्याओं को सूचित करने के लिए बनाये गए। लेकिन प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अंक सूचक दस चिह्न ही क्यों बने ? इससे अधिक क्यों नहीं बने ? इस शंका का निवारण करते हुए पं० सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है कि "पहले पहल गिनने के लिए अपने दोनों हाथो की अंगुलियों को काम मे लाए और दशो के गिन जाने पर एक दहाई कहाई ।"[1] इस युक्ति में सत्य कहाँ तक विद्यमान है कहा नहीं जा सकता। अरस्तु (Aristotal) ने भी अपनी पुस्तक प्राब्लेमाटा (problemata) में ही ये विचार प्रस्तुत किया है। वस्तुत इस विषय मे अन्तिम मत देना कठिन है। इस मत को मानने पर एक अन्य समस्या उत्पन्न हो जाती है और वह यह है कि विश्व में सर्वत्र दस चिह्न नही थे। कही चार ही चिह्न थे, तो कही पांच। हाँ हिन्दू अंको में दस चिह्न अवश्य रहे।

अंकों के चिह्न दस हैं पर मूल अंक जैसा कि कहा जा चुका है नौ ही हैं। इसका उल्लेख हमें वेदों में भी मिलता है—

तस्ये मे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिता: ।[2]

इस मंत्र पर टिप्पणी करते हुए पं० द्विजेन्द्र नाथ आचार्य (बम्बई) ने लिखा है — " उस अंक के नव कोश हैं व विष्टम्भा एक स्तम्भ है। यद्यपि इस टिप्पणी से पूरा स्पष्टीकरण न हो पाया है, फिर भी यह संकेत उक्त मंत्र से अवश्य मिलता है कि अंक नौ ही हैं। इस प्रकार के नव अंक सूचक मन्त्र वेदों मे कई स्थलों पर आए हैं।

इन नौ अंकों के सहारे ही आर्यों ने गणना हेतु कई विशाल संख्याओं का निर्माण कर लिया था। उन विशाल संख्याओं का उल्लेख वेदों में कई स्थलो पर हुआ है। यजुर्वेद की निम्न अंक श्रेणी को देखिये—

एका च मे तिस्त्रश्च मे तिस्त्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे

---

१ – पाटी गणित का इतिहास, पृ० ३ ।
२ – अथर्व सं०, १३।४।१० ।

पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पंचविंशतिश्च मे पंचविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।[1]

अर्थात् — एक (और दो) मेरी तीन (संख्या) मेरी तीन (व दो), मेरी पांच (संख्या) मेरी पांच(और दो) मेरी सात (संख्या), मेरी सात (और दो) मेरी नौ(संख्या) मेरी नौ (और दो) मेरी ग्यारह (संख्या) मेरी ग्यारह (व दो) मेरी तेरह (संख्या) मेरी तेरह (और दो) मेरी पन्द्रह (संख्या) मेरी पन्द्रह (और दो) मेरी सत्रह (संख्या) मेरी सत्रह (और दो) मेरी उन्नीस (संख्या) मेरी उन्नीस (और दो) मेरी इक्कीस (संख्या) मेरी इक्कीस (और दो) मेरी तेईस (संख्या) मेरी तेईस (और दो) मेरी पच्चीस (संख्या) मेरी पच्चीस (और दो) मेरी सताईस (संख्या) मेरी सत्ताईस (और दो) मेरी उन्तीस (संख्या) मेरी उन्तीस (और दो) मेरी इकतीस (संख्या) मेरी इकतीस (और दो) मेरी तेतीस (संख्या) और आगे भी इसी प्रकार संख्या समर्थ हो ।[2] इसी प्रकार की एक अन्य श्रेणी देखिए—

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे ऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम ।।[3]

अर्थ— चार (और चार) मेरी आठ (की संख्या) और मेरी आठ (और चार) मेरी बारह (संख्या) और मेरी बारह (और चार) मेरी सोलह (संख्या) और मेरी सोलह (और चार) मेरी बीस (संख्या) और मेरी बीस (और चार) मेरी चौबीस (संख्या) और मेरी चौबीस (और चार) मेरी अठाईस (संख्या) और मेरी अठाईस (और चार) मेरी बत्तीस (संख्या) और मेरी बत्तीस (और चार) मेरी छत्तीस (संख्या) और छत्तीस (और चार) मेरी चालीस (संख्या) और मेरी चालीस (और चार) मेरी चवालीस (संख्या) और मेरी चवालीस (और चार) मेरी अड़तालीस (की संख्या) श्रेष्ठ कर्म[4] हेतु समर्थ हो ।

---

१ – यजु० सं०, १८।२४ ।

२ – स्वामी दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य, १८।२४ ।

३ – यजु० सं०, १८।२५ ।

४ – 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' —श० ब्रा०, १।७।१।५ ।

उक्त दोनों मन्त्रों मे क्रमशः दो व चार का सामान्य अन्तर (Common Difference) देकर तेतीस व अड़तालीस तक संख्याओं को गिनाया गया है। पहली अंक गणितीय श्रेणी (Arithmetical progression) में विषम संख्या Odd Numbers) दी गई है व दूसरी श्रेणी (Series) मे सम संख्याएं दी गई है। इनके अतिरिक्त इस प्रकार की अनेको संख्याए वेद मन्त्रो मे आती हैं। उनका संकलन पं० अलगूराय शास्त्री ने किया है।[1]

इसी प्रकार की दशोत्तर (१०,२० आदि) संख्याओं को प्रो० एल० वी० गुर्जर ने प्रस्तुत किया है।[2]

इन संख्याओं तक ही आर्य सीमित नही रहे वरन् अत्यन्त बड़ी दशोतर संख्याओ का भी उल्लेख वेदों में हुआ है। यजुर्वेद सहिता मे आई हुई दशोत्तर अंक श्रेणी को देखिए—

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च
शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं च चायुतं च नियुतं
च नियुतं च प्रयुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च
समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे अग्न इष्टका
धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके ॥[3]

अर्थ—हे अग्ने ज्योति स्वरूप परमेश्वर मेरी ये यज्ञादि क्रियायें अभीष्ट फल देने वाली हों तथा ये यज्ञादि क्रियाएं एक और एक का दश गुणित होकर १० दश और दश का दश गुणित होकर १००, और सो का दश गुणा होकर १०००, हजार का दश गुणा होकर १०,०००, दश हजार का दश गुना होकर १,००,००० लाख का दश गुना होकर १०,००,००० दश लाख का दश गुना १,००,००,००० अर्बुद (करोड़) का दश गुना होकर १०,००,००,००० न्यर्बुद (दश करोड़ का दश गुना होकर १,००,००,००००० समुद्र (अरब) का दश गुना होकर १०,००,००,००,००० मध्य अरब का दश गुना होकर १,००,००,००,००,००० अन्त (खरब का दश गुना होकर १०,००,००,००,००,००० (परार्ध)। उक्त प्रकार से बढ़ी हुई ये मेरी यज्ञादि क्रियायें इस लोक और (परलोक) मे अभीष्ट फल देने वाली हों!

---

१ – ऋग्वेद रहस्य, पृ० १५८ से १६६।
२ – L. V. Gurjar, Ancient Indian Mathematics and Vedha. P 15–16.
३ – यजु० सं० १७।२।

यही तो है दाशमिक प्रणाली का मूल । इस अंक श्रेणी में ऋषि ने १:१० के अनुपात से $१०^{१२}$ तक की संख्या प्रस्तुत की है । इसी प्रकार की दशगुणोत्तर संख्या श्रेणियां तैत्तिरीय संहिता[१] काठक संहिता[२] व मैत्रायणी संहिता[३] में आई हैं । श्रौत सूत्र[४] में भी इसी प्रकार की दश गुणोत्तर अंक श्रेणी प्रस्तुत की गई है, लेकिन उसमें संख्याओं हेतु भिन्न शब्दावली प्रयुक्त हुई है । न्यर्बुद तक संख्याओं को तो वे ही नाम दिये गये है जो यजुर्वेद की उक्त श्रेणी मे हैं । लेकिन उसके उपरान्त की दश गुणोत्तर संख्याओं हेतु क्रमशः निखर्व (समुद्र के लिए), समुद्र (मध्य के लिये), सलिला (अन्त के लिए), अन्त्य (परार्ध के लिए), व अनन्त परार्ध की दशगुणिता संख्या $१०^{१८}$ के लिये) परिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं । इसी प्रकार पंचविंश ब्राह्मण में न्यर्बुद के पश्चात् निखर्व वाडव व अक्षिति संज्ञाएं क्रमशः दशगुणोत्तर संख्याओं के लिए प्रयुक्त हुई हैं । तैत्तिरीय संहिता में अन्यत्र निम्न परिभाषाएं मिलती हैं ।

दश	१०
शत	१०० ($१०^{२}$)
सहस्र	१००० ($१०^{३}$)
अयुत	१०००० ($१०^{४}$)
नियुत	१००००० ($१०^{५}$)
प्रयुत	१०००००० ($१०^{६}$)
अर्बुद	१००००००० ($१०^{७}$)
न्यर्बुद	१०००००००० ($१०^{८}$)
समुद्र	१००००००००० ($१०^{९}$)
मध्य	१०००००००००० ($१०^{१०}$)
अन्त	१००००००००००० ($१०^{११}$)
परार्ध	१०००००००००००० ($१०^{१२}$)
उपास्	१००००००००००००० ($१०^{१३}$)
व्युष्टि	१०००००००००००००० ($१०^{१४}$)
उदेष्यत	१००००००००००००००० ($१०^{१५}$)
उद्यत्	१०००००००००००००००० ($१०^{१६}$)

---

१ – तै० सं० ४।४०।११।४ । व ७।२।२०।१ ।

२ – का० सं० १७।१० यहां नियुत व प्रयुत का स्थान भेद हो गया है ।

३ – मै० सं० २।८।१४ इसमें प्रयुत व प्रयुत के बाद पुनः अयुत आया है, तदनन्तर न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त व परार्ध शब्द प्रयुक्त किए हैं ।

४ – श्रौ० सू० १५।१२।४ ।

५ – तै० सं० सप्तम काण्ड, प्रपाठक दो, बीसवां अनुवाक ।

उदित १००००००००००००००००० (१०^{१७})
सुवर्ग १०००००००००००००००००० (१०^{१८})
लोक १००००००००००००००००००० (१०^{१९})

इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थ 'ललित विस्तार' में सर्वोच्च दशगुणोत्तर संख्या तल्लक्षणा दी गई है, जिसका मान १०^{५०} होता है।

इसके साथ ही एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है और वह है अंकों को व्यक्त करने की प्रणाली। उक्त पृष्ठों में संख्याओं की पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत की गई है। ये पारिभाषिक शब्द संख्या विशेष की अभिव्यक्ति करते हैं लेकिन ऐसा भी देखा गया है कि कई स्थलो पर भाषा के लिए शब्दों का प्रयोग होता है। ऋग्वेद[1] मे वर्ष के लिए द्वादश शब्द प्रयुक्त हुआ है—

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥

इक्कीस ऋषियों के समूह के लिए अथर्ववेद[2] में 'त्रिषप्त' शब्द प्रयुक्त हुआ है— 'ये त्रिषप्ताः परियन्ति'

इसी प्रकार भाषा का प्रयोग अंकों हेतु भी हुआ है। यथा —
$\frac{१}{१६}$ की संख्या के लिए कला, $\frac{१}{१२}$ के लिए कुष्ट व $\frac{१}{४}$ के लिए शफ शब्द का प्रयोग हुआ है। शतपथ ब्राह्मण[3] में ४ के लिए कृत शब्द का प्रयोग करते हुए कहा गया है—

चतुष्टोमेन कृतेनायानामुत्तरेऽहन्नेकविंशे प्रतिष्ठायां
प्रतितिष्ठत्येकविंशात्प्रतिष्ठाया उत्तरमह्नर्हतूनन्वारोहत्यृत्वो
वै पृष्ठान्यृतवः संवत्सर ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रतितिष्ठति।

इसी प्रकार ४ के लिये 'कृत' शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय ब्राह्मण[4] मे भी किया गया है— 'ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत्'

याजुष ज्योतिष में १ के लिए "रूप", ४ के लिये "अय", १२ के लिए "गुण व युग" और २६ के लिए "भसमूह" शब्दों का प्रयोग हुआ है—

---

१ – ऋ० सं०, ७।१०३।६।
२ – अ० सं०, १।१।१।
३ – शत० ब्रा०, १३।३।२।१।
४ – तै० ब्रा०, १।५।११।१।

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गत संयुतम् ।
षष्ट्याया षष्ट्या युत द्वाभ्यां पर्वाणां राशि रुच्यते ।।[1]

यतिथि में का वसाम्यस्तो पर्व भाशसमन्वितम् ।
विभज्य भसमूहेन तिथि नक्षत्र भविष्यत ।।[2]

काष्ठ भिरभ्यस्य पर्वाणि मथमितितिथिम् ।
युगल वर्षं सप्तवीर्ष्या द्वर्तभावार्ता मक्रमात् ।।[3]

इसी प्रकार के प्रयोग आर्ष ज्योतिष में भी उपलब्ध है —

विषुवद् तवगुणं द्वाभ्यां रूप हीनं तु षड्गुणम् ।
पल्लब्धं तानिपर्वाणि तदर्धंसातिथि भवेत् ।।[4]

निरेकं द्वादशाभ्यास्तं द्विगुणं गत संयुतम् ।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यांपर्वणा राशिरुच्यते ।।[5]

वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनो जलम ।
अर्यमा को यनाथाः स्युरर्धमच्चम् मस्तकतुः ।।[6]

लाटायन श्रौत सूत्र[7] में २४ व ४८ की संख्याओं हेतु क्रमशः गायत्री (जो कि २४ वर्णों का छन्द होता है) व सावित्री (जो कि ४८ वर्णों का छन्द होता है) शब्दों का प्रयोग किया गया है।

इनके अतिरिक्त संख्याओं को योग, ऋण एवं गुणन द्वारा भी अभिव्यक्त किया जाता था । उसके निम्न उदाहरण मिलते है—

---

१ – या० ज्यो०, श्लोकांक १३ ।
२ – या० ज्यो०, श्लोकांक २० ।
३ – वही, श्लोकांक २५ ।
४ – आ० ज्यो०, श्लोकांक ६१ ।
५ – आ० ज्यो०, श्लोकांक ४ ।
६ – आ० ज्यो०, श्लोकांक ९ ।
७ – ला० श्रौ० सू०, ६।४।१३ ।

योग द्वारा— ऋग्वेद[1] ३१ में ३३३९ की संख्याओं को निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है—

"त्रीणि शता त्री सहस्राणि त्रिंशच्च नव च"
अर्थात्— ३०० + ३००० +३० +९ = ३३३९।

ऋण द्वारा– ऋण द्वारा १९,२९,३९ आदि संख्याओं को व्यक्त किया जाता था। यथा – एकोनविंशति अर्थात् २०–१ = १९ व एकोनचत्वारिंशत् (एक ऊन चालीस = एक कम चालीस) अर्थात् ४०–१ = ३९[2]

गुणन द्वारा—इसका उदाहरण हमें अथर्ववेद में प्राप्त होता है अथर्ववेद[3]। में २१ की संख्या को अभिव्यक्त करने के लिए कहा गया है—

त्रिसप्त अर्थात् — ३ × ७ = २१

---

१ – ऋ० सं० ३।६।९ व १०।५।२।३।
२ – तै० सं०, ७।२।११।
३ – अथर्व० सं० १।१।१।

चारों सरल नियम

अब हम चारों सरल नियमों का वैदिक साहित्य के आधार पर विवेचन करेंगे। वैदिक साहित्य में इन नियमों के लिए योग, वियोग, गुणन, भाग आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। वेदाङ्ग ज्योतिष मे योग अथवा जोड़ के लिए युक्त व सहित शब्द, वियोग अथवा बाकी (ऋण) के लिए ऊन शब्द, गुणा के लिए गुणन शब्द व भाग के लिए भाग शब्द का प्रयोग हुआ है। वेद मन्त्रो में इन चारों सरल नियमों का संकेत प्राप्त होता है। यजुर्वेद[1] के मन्त्र 'एका च मे' का भाष्य करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखा है— "इन मन्त्रों में यही प्रयोजन है कि अंक, बीज व रेखा भेद से जो तीन प्रकार की गणित विद्या है उनमें से प्रथम अंक जो संख्या हैं (१) सो दो बार गिनने से दो की वाचक होती है। इसी प्रकार एक के आगे एक तथा एक के आगे दो व दो के आगे एक आदि जोड़ने से भी समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार एक के साथ ३ जोड़ने से ४ तथा ३ को ३ के साथ जोड़ने से ६ अथवा ३ को ३ के गुणा से ३×३=९ हुए। इसी प्रकार ४ के साथ ४, ५ के साथ ५, ६ के साथ ६, ८ के साथ ८ इत्यादि जोड़ने व गुणने तथा सब मन्त्रों के आशय को फैलाने से गणित विद्या मिल सकती है। जैसे ५५-६६ इत्यादि में ५ को ५ के साथ तथा ६ को ६ के साथ रखने से जान लेना चाहिए। उन मन्त्रो के अर्थों को आगे योजन करने से अंकों से अनेक प्रकार की गणित विद्या अवश्य जान लेनी चाहिये। ज्योतिष में भी जो वेदो का अंग है, इसी प्रकार मन्त्रों से गणित विद्या सिद्ध होती है वह निश्चित व असंख्यात पदार्थों से युक्त होती है।[2] इनमे स्वामी जी ने यह बताने का प्रयास किया है कि वेदों में अंक गणित, बीज गणित व रेखा गणित का मूल विद्यमान है।

---

१ – यजु० सं० १८।२४।

२ – ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृ० १४९–५०।

चारों सरल नियमों से सम्बन्धित वैदिक काल में कौनसी विधियां (Methods) रही हैं, इसका उल्लेख हमें वैदिक साहित्य मे नहीं मिला। हां परवर्ती लेखकों ने उन्हे परम्परागत विधियां ही माना है इससे यह कहा जा सकता है— कि उनमे से अधिकांश विधियां वैदिक काल में प्रचलित रही होंगी। अतः यहां संक्षेप मे उन विधियों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

योग की पद्धतियां— योग की प्रमुख दो विधियां होती हैं— क्रमविधि व उत्क्रम विधि। इन विधियो का विवरण निम्नानुसार है—

१. क्रम विधि—संकलन अथवा योग की "क्रम विधि मे पहले संख्याओं को आधुनिक रीति से क्रमशः ऊपर नीचे लिखते थे, और तब सबसे नीचे (ऊपर वाली संख्या के नीचे (ऊपर) एक क्षेतिज रेखा खीचते थे। जिसके नीचे (ऊपर) योगफल लिखा जाता था। पहले इकाई के अंकों को जोड़ लिया जाता था। इस प्रकार योगफल की इकाई वाला अंक प्राप्त हो जाता था। इसके बाद दहाई वाले अंक जोड़े जाते थे और आए हुए जोड़ में क्षेतिज रेखा के नीचे लिखी हुई दहाई को (यदि होती थी तो) जोड़ते थे, इस प्रकार योगफल का दहाई वाला अंक प्राप्त होता था। इसके बाद इसी प्रकार क्रम से संकडों हजार आदि के अंक जोड़े जाते थे। एक प्रकारान्तर यही भी था कि जोडी, जाने वाली, सबसे बड़ी संख्या सबसे ऊपर लिखी जाती थी और इस संख्या को मिटा-कर योगफल के अंक लिखे जाते थे।[1]

२. उत्क्रम विधि— इस विधि में सर्व प्रथम इकाई के अंकों का योगफल ले लिया जाता है। इसके उपरान्त इसी प्रकार दहाई संकड़ों आदि के अकों को पृथक् पृथक् जोड लिया जाता है फिर इन पृथक्-पृथक् योगफलों को स्थानमान के अनुसार अभिलम्बवत् लिखकर जोड़ लिया जाता है। इन दोनों विधियों का एक संयुक्त उदाहरण मनोरंजन नामक टीका मे उपलब्ध है लेकिन इस रूप मे प्रयोग कभी नही हुआ।[2] उदाहरण निम्न प्रकार से हैं—

प्रश्न — २, ५, ३२, १६३, १८, १०, व १०० का योग करो।

करण— इकाईयों का योग	२+५+२+३+८+०+०	=	२०
दहाईयों का योग	३+६+१+१+०	=	१४
संकड़ों का योग	१+०+०+१	=	२
			३६०

---

१ – पाटी गणित का इतिहास, पं० सुधाकर द्विवेदी रचित, पृ० ५६–६०।

२ – हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, पृ० १२४।

इन दोनों विधियों की व्याख्या पं० गंगाधर ने निम्न प्रकार से की है —
"अंकानां वामतो गतिरिति वितर्कैण एक स्थानादियोजनं क्रमः उत्क्रमस्तु अन्त्यस्थाना दियोजनम्" अर्थात् — अंको की गति बांई ओर से होती है, नियम के अनुसार क्रम संकलन वह है जो इकाई से प्रारम्भ करके किया जाता है और उत्क्रम संकलन वह है जो अन्तिम स्थान से प्रारम्भ करके किया जाता है।[1]

वियोग—सर्वयोग में से कुछ घटाने को व्यकलित (वियोग अथवा ऋण) कहते हैं और जो बचता है उसे शेष कहते हैं।[2]

व्यकलित की क्रिया भी अंकों के स्थान-मान के अनुसार क्रम या उत्क्रम से की जाती है।[3] ये विधियां निम्न प्रकार से हैं—

१. क्रमविधि— क्रम विधि के उदाहरण स्वरूप लीलावती के टीकाकार सूर्य दास ने १००० में से ३६० घटाने की क्रिया निम्न प्रकार से की है—

यथोक्त विधि से घटाने पर शून्य शेष (इकाई स्थान वाला)
१००० | को शून्य में से घटाने पर शून्य शेष रहा, जिसे उक्त पंक्ति
३६० | के इकाई अंक (शून्य के स्थान पर लिख लिया।

पुनः दहाई का अंक ६ ऊपर वाली पंक्ति के ० में से नहीं घटता, अतः एक दहाई लेने पर (१०+०=१०) १० में से घटाये जिससे ४ शेष रहे, जिसे कि दहाई के अंक (०) को मिटाकर उसके स्थान पर लिख लिया। उक्त दश को (जो लिया गया था) आगे के स्थान से घटाते हैं। चूंकि इकाई आदि का स्थान दश गुणोत्तर है अत. वियोज्य का वह अंक जो वियोजन के संगत अंक से नहीं घटाया जा सकता १० (जोड़ कर जो) घटाया जाता है और शेष प्राप्त किया जाता है और वह १० उत्तरोत्तर संख्याओं से उस समय तक लिया जाता है जब तक की उसका पूर्ण रूप से ह्रास नहीं हो जाता है। दूसरे शब्दों में ६ तक के अंक एक स्थान से लेते हैं। स्थान का अन्तर पड़ना दश से प्रारम्भ होता है। अतएव यह ज्ञात किया जाता है कि संख्या में कितनी दहाइयां हैं और वह अंक जो अपने स्थान से नहीं घटाया जा सकता। वह आगे की इकाई से घटाया जाता है और शेष का ग्रहण किया जाता है।

---

१ – गंगाधर कृत लीलावती टीका देखिए।
२ – आर्य भट कृत महासिद्धान्त, अध्याय १५, श्लोकांक २।
३ – भास्कराचार्य कृत लीलावती "कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथवाङ्कयोगे यथास्थानकमन्तरं वा" पृ० ४।

अब आगे के सैकड़े अंक ० में से एक दहाई लो गई अतः वहां ९ शेष रहे जिसमें से कि सैकड़े का अंक ३ घटाया गया जिससे शेष ६ रहे जिसे सैकड़े के ऊपर वाली पंक्ति के स्थान पर लिख लिया व शून्य (सैकड़े के स्थान वाली) से एक दहाई नहीं ली जा सकती थी, अतः उसमें से ३ को घटाते समय सहस्त्र के स्थान से एक दहाई ली गई और घटाया गया। इस प्रकार ली गई दहाई सहस्त्र के अंक से घटाई गई और इस प्रकार सहस्त्र के अंक का पूर्ण ह्रास हो गया।

उक्त विधि में व्यकलन इकाई से प्रारम्भ किया जाता है अतः इसे क्रम विधि कहते हैं। इसमें अंकों को बार-बार मिटाया जाता है। अतः ज्योतिषी इसका प्रयोग नहीं करते थे।[1] इसके स्थान पर उत्क्रम विधि का ही प्रयोग करते थे जो अपेक्षाकृत सरल है

उत्क्रम विधि— इस विधि की व्याख्या पं० सुधाकर द्विवेदी ने निम्न प्रकार से की है।[2]

मानलो कि १२७८१ में से ९९८३ को घटाना है तो जिसमे से घटाना है उस वियोज्य को ऊपर और जिसे घटाना है इस "वियोजक" को यथास्थान नीचे रखने से :

१२७८१ |
 ९९८३ | ऐसा हुआ! अब उत्क्रम रीति मे बड़े स्थान से घटाने में ऐसा बोलते हैं—दो में नव नहीं जाते(घटते)इसलिए एक को शून्य किया जाय दश, दश और दो बारह, बारह मे से गए नव, रहे तीन (१२ को मार कर अर्थात् मिटाकर उसकी जगह ३ लिखते हैं) आठ में से गया आठ, रहा शून्य (ऊपर के आठ को मार कर उसकी जगह शून्य रखते हैं) एक में तीन नही घटता (जाता) इसलिए ऊपर के सैकड़े के एक को किया शून्य और शून्य को किया नव आए दश और एक ग्यारह, ग्यारह में गए तीन रहे आठ। ऐसा करने से बाकी (शेष) ३०९८ बचे।

उक्त दो विधियां क्रम व उत्क्रम हमारे देश मे कब से प्रचलित हुई कहा नहीं जा सकता व न ही यह कहा जा सकता कि इनमें से कौन सी रीति वैदिक काल में प्रचलित थी। लेकिन इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि वैदिक काल मे इन विधियों के आरम्भिक स्वरूप का निर्माण अवश्य हो गया था व इनका प्रयोग

१ – पाटी गणित का इतिहास, पृ० ६३।
२ – पा० ग० ई०, पृ० ६२।

तत्कालीन गणितज्ञ करते थे। योगविधि से संख्या प्रकट करने का उल्लेख ऋग्वेद[1] मे हुआ है— वहां कहा गया है—

'त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्'

अर्थात्—

३०० त्रीणि शता
३००० त्री सहस्राणि
३० त्रिंशत्
९ नव

३३३९

इसमे स्थान मान का ही विशेष ध्यान दिया गया है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल के गणितज्ञों को "अंकानाम् वामतो गतिरिति" के सिद्धान्त का ज्ञान था। व्यकलित हेतु एकोन विंशति अर्थात् २०-१ = १९ का उल्लेख भी वैदिक साहित्य में मिलता है। योग व वियोग का संकेत अथर्ववेद मे भी प्राप्त होता है—

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥

गुणन सिद्धान्त — गुणन (multiplication) का ज्ञान भी वैदिक काल के गणितज्ञों को था। अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र में ही "ये त्रिषप्त" कह कर ७×३=२१ का बोध कराया गया है। गुणन सिद्धान्त के आधार पर ही पहाड़ो का निर्माण हुआ है। इन पहाडो का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष उल्लेख हमें वेदों में मिलता है। यजुर्वेद मे चार के पहाड़े का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है—

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च द्वादश च मे
षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे
चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे
द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे
षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे
चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥[3]

---

१ – ऋ० सं०, ३।९।९ व १०।५२।६ ।
२ – अथर्व सं०, १०।८।२९ ।
३ – यजु सं०, १८।२५।

अर्थात्—

४ और ४ अर्थात् ४ × २ = ८
८ और ४ अर्थात् ४ × ३ = १२
१२ और ४ अर्थात् ४ × ४ = १६
१६ और ४ अर्थात् ४ × ५ = २०
२० और ४ अर्थात् ४ × ६ = २४
२४ और ४ अर्थात् ४ × ७ = २८
२८ और ४ अर्थात् ४ × ८ = ३२
३२ और ४ अर्थात् ४ × ९ = ३६
३६ और ४ अर्थात् ४ × १० = ४०
४० और ४ अर्थात् ४ × ११ = ४४
४४ और ४ अर्थात् ४ × १२ = ४८

(आदि मेरे यज्ञ से सम्पन्न हो ।)

इसी प्रकार ऋग्वेद के एक मन्त्र में भी इसी प्रकार गुणन के सिद्धान्त का अप्रत्यक्ष उल्लेख हुआ है—

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ।।[१]

उक्त मन्त्र के "अग्ने त्वं पारया नव्यो" में कहा गया है कि 'हे अग्ने तू नौ (के अंक) के समान पूर्ण है । अर्थात् जैसे नौ अपने पहाड़ों में विद्यमान है वैसे ही परमात्मा भी अपनी सृष्टि मे सर्वत्र विद्यमान है । नौ के पहाड़े में नौ की सर्व व्यापकता देखिए—

९ × १ = ९
९ × २ = १८ — १ + ८ = ९
९ × ३ = २७ — २ + ७ = ९
९ × ४ = ३६ — ३ + ६ = ९
९ × ५ = ४५ — ४ + ५ = ९
९ × ६ = ५४ — ५ + ४ = ९
९ × ७ = ६३ — ६ + ३ = ९
९ × ८ = ७२ — ७ + २ = ९
९ × ९ = ८१ — ८ + १ = ९
९ × १० = ९० — ९ + ० = ९

१ – ऋ० सं०, १।१८९।२।

इसी प्रकार नौ अपने गुणोत्तरों में सर्वव्यापी है ।[1]

इस समय गुणन की कौन सी विधि प्रचलित थी इस सम्बन्ध में कुछ भी नही कहा जा सकता। परवर्ती साहित्य से हमें अनेक गुणन विधियों का उल्लेख मिलता है ।[2] परवर्ती साहित्य में प्राप्त होने वाली विधियों के नाम निम्न प्रकार से हैं—

कपाट सन्धि विधि, गैलेलिया विधि, तिर्यक् गुणन विधि, स्थान खण्डन गुणन, गोमुत्रिका विधि, रूप खण्ड विधि, बीजीय विधि आदि। वैदिक साहित्य में किसी भी प्रकार की विधि की व्याख्या नही है। शायद उस काल में ये विधियां सर्वप्रचलित रही होंगी। एतत् कारण सिद्धान्त ग्रन्थों में इनकी व्याख्या आवश्यक नही समझी गई।

भाग– भागहार (Division) की भी यही दशा थी।

भागहार का उल्लेख वेदों में अवश्य हुआ है। ऋग्वेद में कहा है—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं स वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥[3]

इस मन्त्र में प्रयुक्त 'भाग' शब्द भागहार की ओर संकेत करता है लेकिन वैदिक काल मे भाग की क्या पद्धति थी? इसका उल्लेख नहीं मिलता। इसकी विधि का प्रथम उल्लेख श्रीधर कृत त्रिशतिका मे प्राप्त होता है, सम्भवतः यही विधि वैदिक काल में प्रचलित थी। इसका आम प्रचलन होता था। इसी कारण इस सिद्धांत का उल्लेख ग्रन्थो मे नही हो सका।

वर्गमूल— वर्ग एवं वर्गमूल (Square Root) का ज्ञान भी आर्यों को था। यद्यपि वर्ग की परिभाषा तो वैदिक साहित्य मे उपलब्ध नही है पर वर्गाकार (square) भवन आदि का निर्माण वे लोग करते थे। वर्ग की परिभाषा करते हुये आर्य भट्ट ने कहा है—

---

१ – इसकी विस्तृत व्याख्या हेतु लेखक की 'गणित सिर दर्द अथवा मनोरंजन' पुस्तक देखिये।

२ – इन विधियों के लिए पं० सुधाकर कृत "पाटी गणित का इतिहास" और विभूति भूषण दत्त व अवधेश नारायण सिंह द्वारा लिखित 'हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास" द्रष्टव्य है।

३ – ऋ० सं०, १०।१९१।२।

"समचतुरस् और उसका क्षेत्रफल वर्ग कहलाता है। दो समान संख्याओं का गुणन भी वर्ग कहलाता है।[1] समचतुरस् का उल्लेख शुल्व सूत्रों में भी हुआ है। उसका विवेचन आगे किया जायगा। वर्ग करने की विधि का संकेत हमें यजुर्वेद मे मिलता है। यजुर्वेद के मन्त्र –

एक च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रियोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पंचविंशतिश्च मे पंचविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।[2]

में जो विषय अंकों (odd Numbers) की अंक श्रेणी (Numerical series) प्रस्तुत की गई है उसका सम्बन्ध वर्ग से है। वह श्रेणी निम्न प्रकार से है—

१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५, २७, २६, ३१, ३३।

इस श्रेणी के किसी भी संख्या का वर्ग ज्ञात हो सकता है। जिस संख्या का वर्ग हमें ज्ञात करना हो हमें श्रेणी के प्रथम उतने ही अंक लेने चाहिए। उन अंकों का योग ही उस संख्या का वर्ग (Square) होगा। मान लीजिये हमे ६ का वर्ग ज्ञात करना है, तो श्रेणी की प्रथम ६ संख्याओ १, ३, ५, ७, ६, ११ को जोड़ लीजिए। योग फल ६ का वर्ग होगा।

$$१ + ३ + ५ + ७ + ६ + ११ = ३६$$
$$६^{२} = ३६$$

इसी प्रकार ११ का वर्ग निम्न प्रकार होगा—

$$१ + ३ + ५ + ७ + ६ + ११ + १३ + १५ + १७ + १६ + २१ = १२१$$

इसी प्रकार अन्य इच्छित संख्याओ का वर्ग भी ज्ञात किया जा सकता है। उक्त मन्त्र के अन्त मे "यज्ञेन कल्पन्ताम्" पद आया है इससे प्रकट होता है कि वेदी (Altar) के निर्माण मे इसका उपयोग होता था। वेदी वर्गाकार होती है,

१ – आर्य भट्टीयम् गणित पाद श्लोकाङ्क ३।
२ – यजु० सं०, १८।२४।

अतः उस वर्गाकार वेदी के निर्माण का कार्य सम्पन्न करने के लिए ही आर्य इसका उपयोग करते थे। यजुर्वेद[1] में अन्यत्र दशगुणोत्तर श्रेणी में "अग्न इष्टका" पद भी आया है, जो यज्ञकुण्ड की ईंटों की ओर संकेत करता है। इससे वर्गाकार क्षेत्र की ईंटों की संख्या ज्ञात की जाती थी।

घन :— घन की परिभाषा करते हुए आर्य भट्ट ने कहा है—

"तीन समान संख्याओं का गुणनफल तथा बारह बराबर कोणों और भुजाओं वाला ठोस भी घन है।[2] भास्कराचार्य ने भी तीन बराबर संख्याओं के गुणनफल को ही घन कहा है—

"समत्रिघातश्च घनः प्रदिष्टः"[3]

घन (Cube) का ज्ञान भी वैदिक काल के गणितज्ञों को था। यजुर्वेद में कहा है—

"त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।"[4]

इस पद में तीन ओर (लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई) से नापने का आदेश है। इसी से अनुमान लगता है कि आर्यों को घन फल का ज्ञान था।

भिन्न (Fractions) :— पूर्ण अंकों की गणित के साथ-साथ भिन्न गणित का भी उपयोग वैदिक काल में होता था। भिन्न शब्द की व्युत्पत्ति "भिदिर् विदरणे" धातु से हुई है। अतः हिस्सा करने को भिन्न कहते हैं। आंगल भाषा में भिन्न के लिए (Fraction) शब्द प्रयुक्त होता है व साथ ही Rout शब्द भी प्रयुक्त होता है। *ये दोनों शब्द लेटिन (Latin) भाषा के क्रमशः Fractio व Ruptus शब्दों से* बने हैं। इन दोनों शब्दों का अर्थ है "टूटा हुआ"। अतः पूर्ण अंकों को तोड़कर अथवा उसके हिस्से कर प्राप्त राशियों की गणित भिन्न (Fraction या Rout) कहलाती है। भिन्न का उपयोग वैदिक काल में भी होता था। ऋग्वेद में $\frac{3}{4}$ की भिन्न को प्रकट करने हेतु 'त्रिपाद्' शब्द का प्रयोग हुआ है—

---

१ – यजु० सं०, १७।२।

२ – आर्य भट्टीयम् गणित पाद, श्लोकाङ्क ३।

३ – लीलावती, पृष्ठ २३।

४ – यजु० सं०, ३४।४३।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥[1]

इसी प्रकार मैत्रायणी संहिता[2] मे कला, कुष्ठ, शफ, पाद आदि का प्रयोग क्रमशः $\frac{1}{16}, \frac{1}{12}, \frac{1}{8}$ व $\frac{1}{4}$ की भिन्न को प्रदर्शित करने हेतु हुआ है। शुल्व सूत्रों में भी भिन्न का प्रयोग हुआ है। इनमें भिन्नों को प्रदर्शित करने की प्रणाली प्रायः वर्तमान सदृश ही है। वहाँ इकाई अंश (Numerators) वाली भिन्नों को उनके हरों (Denominators) के आगे भाग शब्द का प्रयोग कर प्रकट किया जाता था। यथा— $\frac{1}{15}$ के लिए पंचदश भाग[3] व $\frac{1}{7}$ के लिए सप्त भाग[4] व $\frac{1}{5}$ के लिए पंचभाग[5] संज्ञा प्रयुक्त हुई है। इकाई से अधिक अंश (Numerators) वाली भिन्नों को व्यक्त करने हेतु प्रथम अंश वाली संख्या व पुनः हरवाली संख्या का उल्लेख किया जाता था। यथा— $\frac{3}{8}$ के लिए त्रिअष्टम $\frac{2}{7}$ के लिए द्विसप्तम[6] आदि संख्याओं का प्रयोग मिलता है। भिन्न मिश्रित पूर्ण संख्याओं के लिए अगली पूर्ण संख्या के साथ दोनों के अन्तरवाची शब्द का प्रयोग किया जाता था। यथा— $४\frac{1}{2}$ के लिए अर्ध-पंचम शब्द का प्रयोग मिलता है।

इसमें $४\frac{1}{2}$ के बाद पूर्ण संख्या ५ ही है। व पांच व $४\frac{1}{2}$ का अन्तर $\frac{1}{2}$ अर्ध है अतः अर्ध पंचम शब्द $४\frac{1}{2}$ के लिए प्रयुक्त हुआ।

वैदिक काल में नाप तोल की इकाईयों हेतु इन भिन्नों का प्रयोग होता था। समय की गणना हेतु किया गया काल विभाजन हमें शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है जो कि निम्न प्रकार से है :—

१ वर्ष	३६० दिन[7]	अथवा	१ दिन	$\frac{1}{360}$ वर्ष
१ दिन	३० मुहूर्त	अथवा	१ मुहूर्त	$\frac{1}{30}$ दिन

---

१ – ऋ० सं०, १०।९०।४।
२ – मै० सं०, ३।७।७।
३ – आ० शु० सू०, १०।३।
४ – का० शु० सू०, ६।४।
५ – का० शु० सू०, ५।६।
६ – हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, पृ० १७६।
७ – शत० ब्रा०, १०।४।२।२५।

१ मुहूर्त	१५ क्षिप्र	अथवा	१ क्षिप्र	$\frac{1}{15}$	मुहूर्त
१ क्षिप्र	१५ एतर्हि	अथवा	१ एतर्हि	$\frac{1}{15}$	क्षिप्र
१ एतर्हि	१५ इदानीं	अथवा	१ इदानीं	$\frac{1}{15}$	एतर्हि
१ इदानीं	१५ प्राण[1]	अथवा	१ प्राण	$\frac{1}{15}$	इदानीं

उक्त सारणी भिन्नों का एक धलिग रूप प्रदर्शित करती है। यद्यपि इसमें रूप से भिन्नों को प्रदर्शित नहीं किया गया है लेकिन जैसा कि पार्श्व सारणी में प्रदर्शित है वह रूप अवश्य तत्कालीन गणितज्ञों के मस्तिष्क में था। भिन्न का स्पष्ट प्रयोग शुल्व सूत्रों मे भी हुआ है।[2] $\sqrt{2}$ का मूल्य बताने हेतु निम्न भिन्न प्रस्तुत की गई है—

$$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3 \cdot 4} - \frac{1}{3 \cdot 4 \cdot 34}$$

वेदांग ज्योतिष में भी अनेकों समस्याएँ भिन्नों की सहायता से ही सुलझाई गई हैं। उनमें से कुछ समस्याओं (Problems) को प्रस्तुत करना समीचीन होगा—

(क) निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणगत संयुतम।
पष्ट्यां षाष्टम्यां युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरुच्यते ॥[3]

भावार्थ :— सौर वर्षों में से १ घटाकर उसे १२ से गुणा करो। पूर्व और महीनों का जोडकर प्राप्त योग को दो से गुणा करो इसमे सौर पर्व प्राप्त हो जावेंगे। इसके प्रति ६२ के ६० वें भाग में चन्द्र वर्ष होता है।[4]

व्याख्या :— यदि क सौर वर्ष हो व ख सौर मास हो तो—

२[१२(क + १) + ख] = सौर पर्व

और $\frac{62}{60}$ [२ (१२ क − १) + ख] = चन्द्र पर्व

---

१ – शत० ब्रा०, १२।३।२।१।

२ – $\sqrt{2}$ का मूल्य बताते हुए बौधायन व आपस्तम्ब ने कहा है —
"प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन सविशेषः।"
इसी प्रकार $\sqrt{2}$ का मूल्य बताते हुए कात्यायन ने कहा है —
"करणी तृतीयेन वर्धयेतच स्वचतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन सविशेष इति विशेष।"

३ – या० ज्यो०, श्लोकांक १३। व आ० ज्यो०, श्लोकांक ४।

४ – या० ज्यो० (मयंक टीका) मांगीलाल व्यास कृत।

ख—भागास्युरष्ट काः कार्याः पक्ष द्वादश को वृताः ।
एकादश गुणश्चेन शुक्लेऽर्ध चैदया यदि ॥[1]

भावार्थ:— जो पर्व १२ अथवा १२ के गुणक हों, उनके भागांश ८ अथवा ८ के गुणक होते हैं । शेष पर्वों (जो १२ अथवा १२ के गुणक न हों) को ११ से गुणा करके भागांश प्राप्त किए जाते हैं । शुक्ल पक्ष में चन्द्र की राशियो में स्थिति निकालने हेतु ६२ जोड़ने से भागांश प्राप्त हो जाते है ।

व्याख्या :—राशियों की संख्या २७ है । सूर्य एक वर्ष में इन समस्त राशियों में से घूम जाता है । अतः ५ वर्षों में वह २७ × ५ राशियों में से घूम जायगा । ५ वर्षों के काल में १२४ पर्व होते हैं । अतः एक पर्व में सूर्य $\frac{२७\times५}{१२४}$ राशियों में से गुजरेगा अर्थात् एक पर्व मे सूर्य$(१+\frac{११}{१२४})$ एक पूर्ण राशि व अगली राशि के $\frac{११}{१२४}$ वें भाग मे चला जायगा । ये अंश भागांश कहलाते हैं ।[2]

इससे आर्यों के भिन्न सम्बन्धी ज्ञान का पता हमें लग जाता है उक्त मन्त्रों की व्याख्या के अवलोकन से यह भी ज्ञात हो जाता है कि कोष्ठकों का प्रयोग भी वे किसी न किसी रूप मे अवश्य करते थे ।

शून्य :—

शून्य का आविष्कार गणित के क्षेत्र में अपना एक महत्त्व पूर्ण स्थान रखता है । इसका प्रयोग सर्व प्रथम कब व किसने किया ? इस सम्बन्ध में विद्वानो ने भिन्न-भिन्न मत दिये हैं । वास्तव में यदि देखा जाय तो शून्य का प्रयोग सर्व प्रथम भारत में वैदिक काल मे होने लग गया था । वैदिक साहित्य में इसका कई स्थलो पर कई प्रकार से उल्लेख हुआ है ।

व्याकरण के अनुसार शून्य का अर्थ " शुनः संप्रसारणं वा दीर्घत्वमिति यत्" किया जाता है । अमर कोश में इसका अर्थ " शून्यं तु वशिकं तुच्छरिक्तके " किया गया है । शून्य के लिए पूर्ण शब्द का प्रयोग भी मिलता है । अथर्ववेद में इसका उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है —

---

१ – या० ज्यो०, श्लोकांक १५ । व आ० ज्यो०, श्लोकांक १० ।
२ – द्रष्टव्य— I ० ज्यो० मयंक टीका (हस्तलिखित) ।

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते ।।[१]

अर्थात् :— पूर्ण से पूर्ण उदय होता है पूर्ण को पूर्ण ही जीवन देता है। अब आज हम उसको जानें जिससे वह चारों ओर सींचा जाता है। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद मे भी इसका उल्लेख हुआ है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ।।[२]

अर्थात् :— वह पूर्ण है। यह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण ही उत्पन्न होता है। पूर्ण के पूर्ण को निकालने पर (अर्थात् घटाने पर) पूर्ण ही शेष रहता है।

इन मन्त्रों के आध्यात्मिक पक्ष को छोड़कर यदि हम भौतिक व्याख्या करें तो इनमें निम्न निष्कर्ष निकलता है—

$$0 + 0 = 0$$
$$0 - 0 = 0$$
$$0 \times 0 = 0$$

इसी पूर्ण की सहायता से तो दशगुणोत्तर संख्याओं की गणना की जाती थी। जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में हुआ है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शून्य का आविष्कार वैदिक काल में ही हो गया था व इसकी सहायता से गणित की समस्यायें सुलझाई जाती थी। परवर्ती भारतीय गणित साहित्य में तो शून्य पर ग्रन्थ तक लिखे मिलते हैं।

२ – अथर्व० सं०, १०।८।२६ ।
३ – बृहद० उ०, ५।१।१ ।

अध्याय ३

रेखा गणित

अंक गणित की भांति वैदिक काल में रेखा गणित का भी काफी विकास हो गया था। रेखा गणित के लिए उस समय क्षेत्र गणित या क्षेत्र विद्या शब्द प्रयुक्त होते थे। क्षेत्र विद्या अथवा क्षेत्र गणित शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह वह शास्त्र है, जिसमें स्थान विशेष की नाप जोख सम्बन्धी गणना की जाती है। नाप जोख मात्र भूमि की ही नही की जाती थी वरन् समूचे ब्रह्माण्ड की नाप जोख इस शास्त्र में सम्मिलित थी। इस दृष्टिकोण से आधुनिक रेखा गणित की अपेक्षा वैदिक रेखा गणित का क्षेत्र (Scope) अधिक विस्तृत था। सूर्य, चन्द्र, ग्रहों, उपग्रहों आदि की स्थिति सम्बन्धी गणित 'क्षेत्र गणित' के क्षेत्रांतर्गत ही होती थी। क्षेत्र विद्या की आवश्यकता सामान्यतया वेदी निर्माण कार्य के लिए पड़ती थी। पाश्चात्य रेखा गणित का प्रारम्भिक क्षेत्र (Scope) अत्यन्त सीमित था। उसका विकास बहुत बाद में हुआ। इसके क्षेत्र की सीमितता का अनुमान इसके नाम से ही लग जाता है। आग्ल भाषा में रेखा गणित को ज्योमेट्री (Geometry) कहा जाता है। यह शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है, वे हैं जिओ(Geo) व मेट्री(metry)। जिओ का तात्पर्य भूपटल से है व मेट्री का अर्थ नापने से है। इस प्रकार भूमि नापने जोखने की विद्या को ज्योमेट्री कहा गया। क्षेत्र गणित का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। ऋग्वेद में कहा गया है कि—

> यत्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
> अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥[1]

अर्थात्— "जब सूर्य को विध्यद् असुर अर्थात् चन्द्रमा ने ढांप कर अन्धकार मय कर दिया तो क्षेत्र विद्या को नही जाननेवाला (यह देख कर) उन्मत्त हो गया।"

---

१ – ऋ० सं०, ५।४०।५।

इस मन्त्र से स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों को रेखा गणित का ज्ञान था व ग्रह गणित को भी क्षेत्र गणित के अन्तर्गत ही मानते थे। इस मन्त्र से यह भी ज्ञात हो जाता है कि सूर्य ग्रहण के मूल सिद्धान्त (Fundamental principle) से वे परिचित थे। सूर्य चन्द्र व पृथ्वी तीनों जब एक ही रेखा की स्थिति में आ जाते हैं, व चन्द्रमा, सूर्य पृथ्वी के मध्य होता है उस दशा में चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है अथवा प्रकारान्तर से यों कहा जायेगा कि चन्द्रमा के बीच में आजाने से सूर्य पूरा दिखाई नहीं देता है। उसका कुछ भाग काला (तमाच्छादित) दिखाई देता है, जैसा कि चित्र संख्या एक में दिखाया गया है।
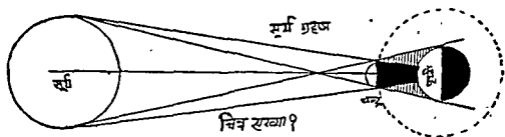
सूर्य ग्रहण का तो स्पष्ट उल्लेख उक्त मन्त्र में हो ही गया है। लेकिन आर्यों को चूंकि सूर्य ग्रहण का ज्ञान था, अतः निश्चित रूप से उन्हें चन्द्र ग्रहण का भी ज्ञान था और वे जानते थे कि पृथ्वी जब सूर्य व चन्द्र के बीच में आ जाती है, उस समय पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और चन्द्रमा तमाच्छादित हो जाता है। जैसा कि चित्र संख्या दो मे दिखाया गया है —
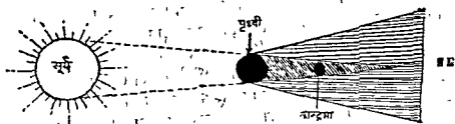
इन ग्रहणों के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से चन्द्र व पृथ्वी की गति सम्बन्धी गणना भी आर्य करते थे। इससे उन्हे गति शास्त्र (Dynamics) व स्थिति शास्त्र (Statics) का भी ज्ञान था, यह सुनिश्चित होता है। क्योंकि इनके अभाव में ग्रहण गणित सम्भव नही। सम्भवतः स्थिति शास्त्र (Statics) व गति शास्त्र(Dynemics) दोनों, ही क्षेत्र गणित की ही शाखायें थीं।

रेखा गणितीय परिभाषायें

वैदिक साहित्य से हमें रेखा गणित के कतिपय परिभाषिक शब्द भी उपलब्ध होते हैं। यजुर्वेद में कहा है—

को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
कः सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ।।[१]

अर्थात्— "कौन इस विश्व के केन्द्र को जानता है ? सूर्य भूमि, चन्द्रलोक व सौर परिवार आदि को कौन जानता है, उत्पन्न करता है व प्रकाशित करता है?

उक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा गया है कि —

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्य्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ।।[२]

अर्थात् — मैं इस पृथ्वी का केन्द्र जानता हूं। सूर्य व चन्द्र के उत्पति कर्त्ता प्रकाशमान कर्त्ता को भी जानता हूं।

इस पर जिज्ञासु पुनः प्रश्न करता है —

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ।।[३]

अर्थात् — "हे विद्वान् ! मै आपसे पृथ्वी का परम् अन्त पूछता हूँ व यह पूछता हूं कि इस पृथ्वी का केन्द्र कहां है ? सेचनकर्ता बलवान् पुरुष का पराक्रम पूछता हू व वाणी के उत्तम आकाश रूप स्थान को पूछता हूं।"

इस पर विदान् उत्तर देता है—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ।।[४]

अर्थात् — "यह वेदी ही पृथ्वी का परम अन्त है व यह यज्ञ ही विश्व का केन्द्र है। यह सोम ही पराक्रम कर्ता का बल है। यह ब्रह्मा का उत्तर स्थान है।

---

१ – यजु० सं०, २३।५९।
२ – वही, २३।६०।
३ – वही, २३।६१।
४ – वही, २३।६२।

इन मन्त्रों से वृत्त (Cirle) व गोले (Sphere) के ज्ञान का परिचय मिलता है। हम जानते हैं कि वृत्त का कोई अन्त नहीं। वृत्ताकार पथ पर यात्रा करने पर हम घूम कर पुनः उसी स्थान पर आजाते हैं, जहां से हमने यात्रा आरम्भ की थी। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि आरम्भ ही अन्त है। इसी कारण विद्वान् जिज्ञासु के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है कि यही स्थान जहां हम खड़े हैं वहीं पृथ्वी का अन्त है। जब जिज्ञासु द्वितीय प्रश्न करता है कि इस पृथ्वी का मध्य कहां है? तो इस पर भी विद्वान् प्रत्युत्तर देता है कि जहां यज्ञ हो रहा है, वही इस पृथ्वी का मध्य है। वस्तुतः वृत्त पर कोई भी मध्य बिन्दु वृत्त का मध्य हो सकता है। यदि उस बिन्दु से कोई एक रेखा केन्द्र में से होती हुई खींची जाय तो यह वृत्त को समविभाजित करेगी। चित्र संख्या तीन को देखिए —
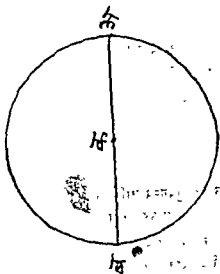
दिए गए वृत्त पर एक विन्दु 'अ' है। 'अ' से एक रेखा वृत्त के केन्द्र 'क' में से होती हुई खींची गई है जो वृत्त को दूसरी ओर 'ब' विन्दु पर काटती है। यह 'अ' 'ब' रेखा वृत्त को समद्विभाजित करती है। यह वृत्त का व्यास(Diameter) भी है।

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी रेखा गणित की कुछ पारिभाषिक शब्दावलि उपलब्ध होती है। ऋग्वेद में कहा है —

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत्।[1]

अर्थात् — प्रमा कितनी है? प्रतिमा क्या है? व परिधि कितनी है? इसमें प्रमा, प्रतिमा व परिधि तीनों शब्द रेखा गणित के ही पारिभाषिक शब्द हैं। इसके अतिरिक्त एक स्थान पर तीन वृत्तों का वर्णन आया है।

धर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम्॥[2]

१ – ऋ० सं०, १०।१३०।३।
२ – ऋ० सं०, १०।११४।१।

इसी प्रकार ऋग्वेद में एक स्थान पर वृत्तान्तर्गत त्रिभुज का वर्णन हुआ है—

त्रीणि पदा वि चक्र मे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥[१]

उक्त मन्त्र में प्रथम पाद में एक चक्र (वृत्त) के तीन पद (बिन्दु) का उल्लेख है। इन तीनों बिन्दुओं को मिलाने से वृत्त के अन्तर्गत त्रिभुज बन जायेगा। चित्र संख्या ४ देखिए—
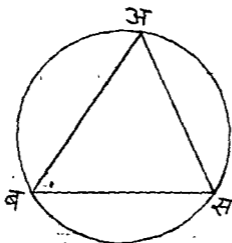
उक्त वृत्त पर अ, ब, स, तीन बिन्दु हैं, जिन्हें मिलाने से वृत्तान्तर्गत त्रिभुज का निर्माण हो जायगा। इन संकेतों से ज्ञात होता है कि आर्यों ने रेखा गणितीय ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। इसका प्रयोग वे अपने जीवन के सामान्य व्यवसाय में किया करते थे। भवनों का निर्माण, रथों का निर्माण, नौकाओं का निर्माण आदि व्यवसायों में इसका प्रयोग किया जाता था। क्योंकि रेखा गणितीय ज्ञान के अभाव में इनका निर्माण सम्भव नहीं। ऋग्वेद में अनेको खम्भो व द्वारों वाले मकानों का उल्लेख हुआ है। उसमें उन्हें प्रत्येक स्तम्भ का आयतन समान रखना पड़ता होगा। क्योंकि समान आयतन के अभाव मे भवन के सौन्दर्य एवं दृढता का निर्वाह नहीं हो सकता था। भवन की खिड़कियों का भी क्षेत्र फल समान रखा जाता था। इस प्रकार इस कार्य में उन्हें रेखा गणित की सहायता निश्चित रूप से लेनी पड़ती थी।

इसी प्रकार रथ निर्माण व नौका निर्माण में भी उन्हें रेखा गणितीय(Geometrical) ज्ञान की आवश्यकता रहती थी। रथों में लगने वाले पहियों(Wheel) का

१ – ऋ० सं०, १।२२।१८। व यजु० सं०, ३४।४३।

क्षेत्र फल समान होना आवश्यक है। समान क्षेत्र फल के अभाव में रथ का उपयोग सही ढग से नही हो सकता है। इसी प्रकार नौकाओ के लिए समतुल्यता (Symmetry) का ध्यान रखना आवश्यक था। इस प्रकार वे अपने उपयोग की प्रायः समस्त वस्तुओ मे रेखा गणित के सिद्धान्तों का प्रयोग करते थे।

रेखा गणित व वेदी विज्ञान —

रेखा गणितीय सिद्धान्तो की विस्तृत व्याख्या हमे वेदो के व्याख्या ग्रन्थ ब्राह्मणों व शुल्व सूत्रो में प्राप्त होती है। शुल्व सूत्रों में वेदी विज्ञान (Altar Science) प्रकरण के अन्तर्गत रेखा गणित के अनेकों साध्य (Theorem) व प्रमेयोपाद्यों की विवेचना कर दी गई। कृष्णयजुर्वेद मे कई वेदियों का नामोल्लेख हुआ है। इन वेदियों के निर्माण मे रेखा गणित के सिद्धान्तों की आवश्यकता रहती थी। वर्तमान में सामान्यतया एक, दो प्रकार की वेदियां बनाते हैं लेकिन उस काल में बनाई जाने वाली वेदियों के नाम कृष्ण यजुर्वेद मे चतुरस्र, श्येन, वक्र पक्ष, व्यस्त पुच्छ, कंक चित् अजल चित, प्रउग चित्, अमा चित् आदि आदि बताये गये हैं। ये वेदियां अधिकांशतः श्येन पक्षी (बाज) के शरीर के आकार पर आधारित होती थी। इन वेदियो के निर्माण की विधि शुल्व सूत्रों मे दी गई है।

श्येन चित् वेदी व उसका निर्माण

इस काल मे श्येनचित् वेदी का विशेष प्रचार था। इसका आकार निम्न प्रकार से होता था।
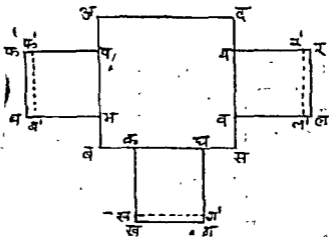
उक्त चित्र में 'अ' 'ब' 'स' 'द' पक्षी का शरीर है जिसमें कि एक एक पुरुष के चार वर्ग समाहित हैं। 'प' 'फ' 'ब' 'भ' व 'य' 'र' 'ल' 'व' दो पंख की लम्बाई एक पुरुष प्रदेश व चौड़ाई एक पुरुष है। वहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि एक पुरुष दस प्रदेश के बराबर होता है। पंखों के नाप की ही पूंछ [पुच्छ] 'क' 'ख' 'ग' 'घ' है।

ऐसी कई प्रकार की वेदियों का निर्माण आर्य करते थे व इन्ही वेदियो की रचना (Construction) के आधार पर अनेकों रेखा गणितीय साध्यो का (*Geometrical theorems*) प्रतिपादन भी वैदिक काल के गणिताचार्यों द्वारा हुआ। गोलवेदी के समान क्षेत्रफल वाली आयताकार वेदी का निर्माण भी वे कर सकते थे। इसके साथ ही गोल वेदी को समान क्षेत्रफल वाली वर्गाकार वेदी में भी परिणत कर सकते थे। डा० थीबू ने भी लिखा है कि "याज्ञिकों को यह जानना अनिवार्य था कि यज्ञ कुण्ड के निर्माण में वे जो एक वर्ग के बराबर बनाते हैं, उसे दो या तीन वर्गों के बराबर कैसे बनाया जाय ? अथवा नियत वर्गों को आयतो के आकार में किस प्रकार परिणत करना चाहिए, नियत त्रिभुजों के बराबर वर्ग व आयत किस प्रकार बन सकते है, एक वृत एक निश्चित वर्ग के लगभग कैसे बनता है ?" वैदिक साहित्य में रेखागणित की अनेको जटिल समस्याओं (Problems) का हल (Solutions) मिलता हैं। उनमें से कुछ समस्याओं पर हम निम्न पृष्ठो में विचार करेंगे।

इस प्रसंग मे हम सर्व प्रथम उस सिद्धान्त की व्याख्या करेंगे जिसे आमतौर पर पाइथागोरस का सिद्धान्त (Pythagorian Theorem) कहते हैं। कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि यूनानी गणितज्ञ पाइथागोरस जिसके कि नाम से यह सिद्धान्त अथवा साध्य प्रसिद्ध है, भारत आया था व भारत में रहकर स्थानीय गणितज्ञों से शिक्षा प्राप्त की। शुल्व सूत्रों के सिद्धान्तो का भी उसने अध्ययन किया। पुनः स्वदेश लौटकर उसने इन भारतीय सिद्धान्तों का प्रचार किया। कुछ विद्वान् इसे यूनानी भी स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि यह भारतीय गणितज्ञ ही था व इसका मूल नाम पृथ्वीगुरु था। इसने विदेशों में जाकर गणित के सिद्धान्तों का प्रचार किया। यूनानियो ने इसके नाम पृथ्वीगुरु को पाइथागोरस उच्चारित किया। वास्तव मे पिछला मत कुछ उचित प्रतीत होता है। भारतीय नामो का उच्चारण यूनानी इसी प्रकार करते हैं। चन्द्रगुप्त को सन्ड्रकोट्टस अथवा इण्ड्रोकोट्टस, पाटलीपुत्र को पालीब्रोथ, श्रीकृष्ण को हिरीक्लीज आदि विकृत नामो से मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक इंडिका में पुकारा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव मे पृथ्वीगुरु नामक किसी भारतीय गणितज्ञ को उन्होने पाइथोगोरस के नाम से अपना लिया था। इस सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। लेकिन यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जिस सिद्धान्त को पाइथागोरस के नाम पर पाइथागोरस का सिद्धान्त कहा जाता है, वह पाईथोगोरस से शताब्दियों पूर्व भारत में आविष्कृत हो चुका था। शुल्व सूत्रो मे इस सिद्धान्त का सर्व प्रथम प्रतिपादन हुआ। अतः इसे "शुल्व सूत्री सिद्धान्त" कहना ही उचित है। बौधायन ने अपने शुल्व सूत्र मे इस सिद्धान्त को निम्नानुसार प्रतिपादित किया है —
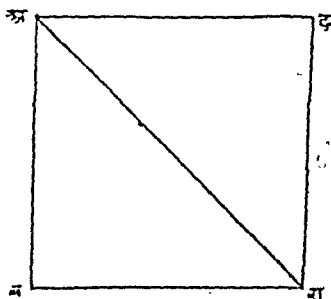
अर्थात् — एक वर्ग के कर्ण का वर्ग उस वर्ग से दुगने क्षेत्र को प्रस्तुत करता है। इस सिद्धान्त को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—
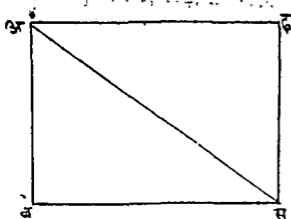
उक्त अ, ब, स, द वर्ग में अ, स कर्ण है अतः

(अ स)^2 = २ (ब स)^2 अथवा २ (अ ब)^2 आदि। बौद्धायन ने इस सिद्धान्त के आधार पर एक अंक सारिणी भी दी है जो निम्न प्रकार से है—

"त्रिचतुष्कयोर्द्वादशिकपञ्चकयोः पञ्चदशिकाष्टिकयोः सप्तिक चतुर्विंशकयो-द्वादशिकपञ्चत्रिंशिकयोः पञ्चदशिकाष्टिकयो सप्तिक चतुर्विंशकयोर्द्वादशिकपञ्च-त्रिशकयो पञ्चदशिकषट् त्रिंशकयोरित्येतासूपलब्धिः।"

अर्थात् —

(३)^2 + (४)^2 = (५)^2
(१२)^2 + (५)^2 = (१३)^2
(१५)^2 + (८)^2 = (१७)^2
(७)^2 + (२४)^2 = (२५)^2
(१२)^2 + (३५)^2 = (३७)^2
(१५)^2 + (३६)^2 = (३९)^2

इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब एक और समीकरण (equation) देता है —

(१५)^2 + (२०)^2 = (२५)^2

कात्यायन इससे भी एक और अधिक कदम लेता हुआ कहता है कि—

" पद तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णयारज्जुर्दशकरणी "

अर्थात्—

(१)^2 + (३)^2 = १०

व " द्विपदा तिर्यङ्मानी त्रिपदा पार्श्वमानी तस्याक्ष्णया रज्जुश्चत्वारिंशत्करणी ।"

अर्थात्— $(२)^2 + (६)^2 = ४०$

कात्यायन व आपस्तम्ब ने इसी प्रसंग मे निम्न सूत्र और दिए हैं—

[i] " अर्धप्रमाणेन पाद प्रमाणं विधीयते"

अर्थात् — $\left(\frac{१}{२}\right)^2 = \frac{१}{४}$

[ii] " तृतीयेन नवमी कला "

अर्थात् — $\left(\frac{१}{३}\right)^2 = \frac{१}{९}$

[iii] "चतुर्थेन षोडषी कला"

अर्थात्—$\left(\frac{१}{४}\right)^2 = \frac{१}{१६}$ आदि ।

इस प्रकार पाइथागोरस के नाम से प्रसिद्ध इस शुल्व सूत्रीय सिद्धान्त की काफी विस्तृत व्याख्या हमे शुल्व सूत्रों से प्राप्त हो जाती है ।

दो असमान वर्गों को जोड़ना व घटाना :—

उक्त पाइथागोरस के नाम से जाने जाने वाले सिद्धान्त के अलावा अनेक रेखा-गणितीय रचनाएं (Geometrical constructions) हमें शुल्व सूत्रो में प्राप्त होते हैं । इनमें से कुछ का विवेचन यहाँ किया जायगा । दो असमान क्षेत्रफल वाले वर्गों को जोडने की विधि पर प्रकाश डालते हुए आपस्तम्ब ने कहा है—

तुल्ययोश्चतुरस्रयोरुक्तः समास ।
नाना प्रमाणयोश्चतुरस्रयोः समास ।
ह्रसीयसः करण्या वर्षीयसो वृध्रमुल्लिखेत् ।
वृध्रस्याऽक्ष्णयारज्जुरुभे समस्यति ॥[1]

व्याख्या :—इस क्रिया को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है ।

---

१ – बोद्धायन व कात्यायन ने इस क्रमशः निम्न-प्रकार से व्यक्त किया है—

(i) नाना चतुरस्रे समस्य नकनीयसः करण्याः करण्या वर्षीयसो ।
वृध्रमुल्लिखेत् वृध्रस्याक्ष्णयारज्जुः समस्तया पार्श्वमानी भवति ।

(ii) समचतुरस्राणामुक्तः समासः । नाना समासे ह्रसीयसः करण्यावर्षीयसोऽपि-च्छिद्यमानस्याक्ष्णयारज्जुरुभेस्यतीति समासः ।
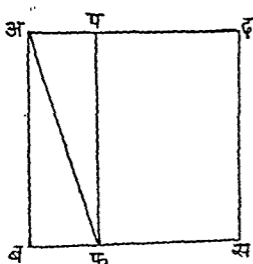
अ, ब, स, द और क, ख, ग, घ दो असमान वर्ग हैं। इन्हें हमें मिलाना है।

रचना :—'अ','द' में से 'अ','प' = 'क','घ' और 'ब','स' में से 'ब','फ' = 'ख','ग' काटा। 'प','फ' को मिला दिया और 'अ', 'फ' को भी मिला दिया, 'अ','फ' का वर्ग 'अ','ब','स','द' + 'क','ख','ग','घ' के क्षेत्रफल के बराबर होगा।

क्योंकि

$$(\text{अ फ})^2 = (\text{ब फ})^2 + (\text{ब अ})^2$$

लेकिन

$$(\text{ब फ})^2 = (\text{ख ग})^2$$

इसलिए $(\text{अ फ})^2 = (\text{ख ग})^2 + (\text{ब अ})^2$

इसी प्रकार दो असमान क्षेत्रफल वाले वर्गों का अन्तर ज्ञात करने की विधि का उल्लेख भी शुल्व सूत्रों में हुआ है। इस सम्बन्ध में बौधायन ने बताया है कि—

चतुरश्राच्चतुरश्रं निर्जिहीर्षन्या वश्रिः जिहीर्षेत्तस्यकरण्यावर्षीयसो वृध्रमुल्लि-खेदवृध्रस्य पार्श्वमानीक्ष्णयेरतरपार्श्वमुपसंहरेत्सा निपेतत्तत्रपच्छिन्द्याच्छिन्नया निरस्तम्।

व्याख्या :—इस क्रिया को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है—
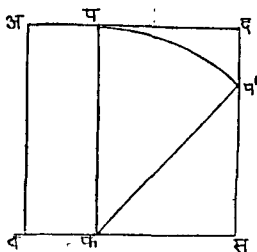
अ ब स द और क ख ग घ दो वर्ग हैं। दोनों का क्षेत्रफल अलग-अलग है। इन दोनों का अन्तर ज्ञात करना है। इसके लिए वर्ग अ ब स द में से क ख ग घ वर्ग की भुजा ख ग के बराबर फ स काटा गया। स द भुजा के समान्तर फ प रेखा खींची। पुनः फ को केन्द्र मानकर एक चाप खींचा जो स द को प' पर काटता है—

पफ = प' फ

(प' फ)^{२} = (फ स)^{२} + (स प')^{२}

चूंकि फ प' = फ प = स द

और फ स = ख ग

(स द)^{२} — (ख ग)^{२} = (स प)^{२}

√२ का मूल्य [Value] ज्ञात करना:—√२ का मूल्य गणितीय क्षेत्र में एक जटिल एवं विवादास्पद समस्या बनी हुई है। वैदिक काल के गणितज्ञों ने भी इस ओर प्रयास किया था व २ का वर्ग-मूल निकालने में वे सफल भी रहे। बौद्धायन ने अपने शुल्व सूत्र में इस सम्बन्ध में कहा है—

"प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेतच्चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन सविशेषः"

कात्यायन ने भी यही कहा है—

"करणी क्षेत्रायामं तृतीयेन स्वतृतीयांशोनेनसविशेषः इतिविशेषः"

अर्थात्—इकाई माप में उसके एक तिहाई की वृद्धि कीजिये। पुनः कुल में से एक तिहाई के चतुर्थांश का चौतीसवां भाग घटा दीजिये। यह सविशेष है। यदि कर्णी एक हो तो विकर्णी निम्न होगी—

$$१ + \frac{१}{३} + \frac{१}{३.४} — \frac{१}{३.४.३४}$$

चित्र संख्या १० को देखिये । अ ब स द एक वर्ग है जिसमें—

अ ब = १

अ स = $\sqrt{२}$
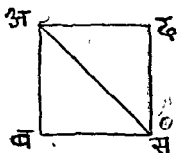
डा० थीबू व जी० आर० के० ने इसकी पुष्टि का प्रयास किया लेकिन वे शुद्ध हल नहीं निकाल सके। प्रो० एल० वी. गुर्जर ने इस सिद्धान्त की पुष्टि निम्न प्रकार से की है[1]—

अध्यर्ध पुरुषा रज्जुर्द्वौ सवादौ करोति

अर्थात् १ और $\frac{१}{२}$ पुरुष वर्ग दो व चौथाई २$\frac{१}{४}$ के बराबर होता है—

$$\left(१+\frac{१}{२}\right)^२ = २\frac{१}{४}$$

इसी प्रकार

$$\left(१+\frac{१}{३}\right)^२ = \frac{१६}{९}$$

और $२-\frac{१६}{९} = \frac{२}{९}$

इसमें एक ऐसी संख्या जोड़ी जाय कि उक्त संख्या का योग २ हो जाय। माना वह संख्या क है तो—

$$\left(१+\frac{१}{३}+क\right)^२ = \frac{१६}{९}+\frac{८क}{३}+क^२$$

$क^२$ को छोड़ दिया क्योंकि वह अत्यन्त लघु संख्या होगी। इससे—

$$\frac{८}{३}क = \frac{२}{९}$$

$$क = \frac{१}{१२} = \frac{१}{३.४}$$

1 – Ancient Indian Mathematics, P.P. 39.

क का मान रखने पर

$\sqrt{२} = १ + \frac{१}{३} + \frac{१}{३.४}$ इसका वर्ग करने पर

$१ + \frac{१}{३} + \frac{१}{३.४} = \left(\frac{१७}{१२}\right)^२ = \frac{२८९}{१४४}$ २

$२ - \frac{२८९}{१४४} = \frac{१}{१४४}$

अब एक नवीन संख्या 'ख' मान ली जाय तो —

$\left(१ + \frac{१}{३} + \frac{१}{३.४} + ख\right)^२ = \left(\frac{१७}{२} + ख\right)^२$

$= \frac{२८९}{१४४} + \frac{३४ख}{१२} + ख^२$

$ख^२$ को त्यागने पर (क्योंकि यह अत्यन्त छोटी संख्या है)—

$\frac{३४ख}{१२} = -\frac{१}{१४४}$

या $ख = \frac{१}{३.४.३४}$ अतः $\sqrt{२} = १ + \frac{१}{३} + \frac{१}{३.४} - \frac{१}{३.४.३४}$

आयत को समान क्षेत्रीय वर्ग में परिणित करना :—आयत को समान क्षेत्रफल वाले वर्ग में परिणित करने की विधि पर प्रकाश डालते हुए बौद्धायन ने अपने शुल्व सूत्र मे कहा है—

"दीर्घं चतुरस्रं चिकीर्षंस्तिर्यङ्मानी करणी कृत्वा शेषं द्वेधा विभज्य विपर्यस्येतरमोपदध्यात् खण्ड मावापेन तत्सपूरये तस्य निर्हार उक्तः ।"

व्याख्या—एक आयत को वर्ग में परिणित करने हेतु आयत की चौड़ाई के बराबर एक वर्ग आयत में बना लीजिए शेष आयत को दो समान भागों में विभाजित कर लीजिए। इन समान भागों की चौड़ाई लेकर वर्ग के साथ एक अन्य आयत भी बना दीजिए। इस आयत को वर्ग के ऊपर वाले आयत तक बढ़ा दीजिए। पुनः वर्ग की भुजा में आयत की चौड़ाई जोड़कर गति उत्पन्न कीजिये। जहाँ वह आयत को काटेगी उससे वर्ग की भुजा प्राप्त हो जायगी।

उदाहरण—चित्र को देखिए। अ ब स द एक आयत है। अ ब के समान अ द और ब स को क्रमशः म और न स्थानों पर काटा। म न को मिला दिया। शेष बचे हुए आयत म न स द को प फ द्वारा समद्विभाजित किया। वर्ग अ ब न म की अ न भुजा के साथ आयत म न फ प को खड़ा किया जो कि न ब य र है। प फ तथा य र को बढ़ाया। ये दोनों एक दूसरी को क स्थान पर काटती हैं। भुजा म र में म को स्थिर रखकर गति उत्पन्न की जो कि प क को ख स्थान पर काटती है। प ख हमारे इच्छित वर्ग की भुजा होगी।
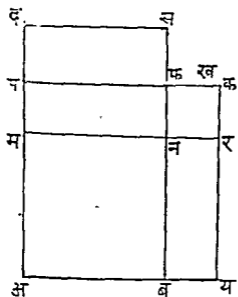
वर्ग को समान क्षेत्रफल वाले वृत्त में परिणित करना—प्रदत्त वर्ग के समान क्षेत्र का वृत्त बनाने की विधि बताते हुए बौद्धायन ने लिखा है—

चतुरस्रं मण्डलं चिकीर्षन्नक्ष्णयार्धं मध्यात्प्राचीमभ्यापातयेत् यदतिशिष्यते तस्य सह तृतीयेन मण्डलं परिलिखेत् ।

व्याख्या—वर्ग को वृत्त में परिणित करने हेतु वर्ग के अन्तर्गत एक कर्ण खींचो। कर्ण के मध्य बिन्दु को केन्द्र मानकर किसी एक कोने से एक चाप खींचो। जिस भुजा की ओर चाप खींचा गया, उसके मध्य बिन्दु से एक अभिलम्ब खींचा, जो चाप को किसी स्थान पर काटे। इस दूरी के तृतीय भाग से वर्ग के केन्द्र तक का अर्ध-व्यास (Radius) लेकर वृत्त बनाइये। वह वर्ग के समान क्षेत्रफल वाला वृत्त होगा।
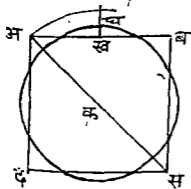
उदाहरण—चित्र को देखिये। अ ब स द एक वर्ग है। अ स कर्ण खींचा गया जिसका कि मध्य बिन्दु क है। क को केन्द्र मानकर क अ अर्धव्यास लेकर एक चाप खींचा। पुनः अ ब के केन्द्र बिन्दु ख पर लम्ब डाला जोकि चाप को ग स्थान पर काटता है। ख से ख ग का एक तिहाई भाग ख घ काटा। अब क को केन्द्र मानकर तथा क घ अर्ध-व्यास लेकर एक वृत्त खींचा जोकि क्षेत्रफल में वर्ग अ ब स द के तुल्य होगा।

वृत्त को वर्ग में परिणित करना—वृत्त को वर्ग में परिणित करने की विधि बौद्धायन ने निम्न प्रकार से दी है—

मण्डलं चतुरस्रं चिकीर्षन्विष्कंभमष्टौ भागान्कृत्वा भागमेकोनत्रिंशंधा विभाज्याष्टाविंशति भागानुद्धरेद्भागस्य च षष्ठमष्ट भागोनम्।

व्याख्या—वृत्त को वर्ग में परिणित करने हेतु व्यास को आठ बराबर भागों में विभक्त करो। पुनः उनमें से एक भाग को २९ (एकोनत्रिंश) समान भागों में विभक्त करो। इन उनतीस व शेष षष्ठम भाग को षष्ठ भाग के अष्ट भाग सहित घटाओ।

वर्ग को विषमबाहु चतुर्भुज में परिणित करना—वर्ग को विषमबाहु चतुर्भुज में परिणित करने की विधि बताते हुए बौद्धायन ने कहा है:—

चतुरस्रमेकतोऽणिमाञ्चिकीर्षन्नणिमतः करणीं तिर्यङ्मानीं कृत्वा शेषमक्ष्णया विभज्य विपर्यस्येतरत्रो अपदध्यात्।

व्याख्या—एक वर्ग को समान क्षेत्रीय विषमबाहु चतुर्भुज में परिणित करने हेतु विषमबाहु की एक भुजा के समान भाग वर्ग की किसी भुजा में से काट लीजिये। पुनः उस स्थान से कर्ण खींचिये त्रिभुजाकार टुकड़े को विपरीत दिशा में जोड़ देने पर अभीष्ट विषमबाहु चतुर्भुज तैयार हो जायगा।

उदाहरण—अ ब स द एक वर्ग है। अ द पर एक बिन्दु 'क' ले लिया 'अ''ब' हमारे अभीष्ट विषमबाहु चतुर्भुज की शीर्ष भुजा है 'क''स' को मिला दिया। अब त्रिभुज 'क''स''द' को 'अ' 'ब' पर इस प्रकार रखा कि बिन्दु 'स' 'अ' पर पड़े व बिन्दु 'द' 'ब' पर पड़े व बिन्दु 'क' बाहर बिन्दु 'ख' पर पड़ेगा। 'अ''ख' स''क' अभीष्ट विषमबाहु है।
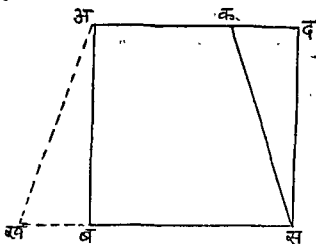
इस प्रकार की अनेकों रेखा गणितीय रचनाएँ एवं साध्य वैदिक साहित्य उपलब्ध हैं अतः स्पष्ट हो जाता है कि रेखागणित के क्षेत्र में भी आर्यों ने पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर लिया था।

अध्याय ४

बीज-गणित

अंक गणित व रेखागणित की भांति बीजगणित के मूलभूत सिद्धान्तो का अभ्युदय वैदिक काल में ही हो गया था। गणित के सूक्ष्म सिद्धान्तों को सरल करने हेतु बीजगणित का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। जैसा कि इस गणितीय शाखा के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें बीजों (अक्षरों) की सहायता से ही गणितीय समस्याओं का हल निकाला जाता है। विशाल संख्याओं के स्थान पर एक बीज मान लिया जाता है। पुनः इसी बीज को इकाई मानकर गुणा भाग आदि किया जाता है। इसे प्राचीन गणितज्ञों ने "अव्यक्त गणित" संज्ञा भी प्रदान की थी। वास्तव मे यह सही भी है, क्योंकि इसमे अव्यक्त चिह्नों (अक्षरों Alpbabates), जिनका कि मूल्य ज्ञात नहीं होता, की सहायता से गणितीय समस्याओं का हल निकाला जाता है। इतिहासकारों के मतानुसार ब्रह्मगुप्त प्रथम भारतीय गणितज्ञ था, जिसने बीज-गणित का आविष्कार किया। ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रंथ "ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त" में बीजो को अंकों के स्थान पर प्रयुक्त करने का आदेश दिया है।[1] "जगद्गुरु भारत" नामक पुस्तक में किसी आभिद नामक भारतीय गणितज्ञ को बीज गणित का आविष्कार-कर्ता माना है। लेकिन वास्तव में बीज गणित का प्रयोग भारत में वैदिक काल

---

१ – वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात्ङ्मौ यः।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा॥

उक्त श्लोक के अनुसार—क=१, ख=२, ग=३, घ=४, ङ=५, च=६, छ=७, ज=८, झ=९, ञ=१०, ट=११, ठ=१२, ड=१३, ढ=१४, ण=१५, त=१६, थ=१७, द=१८, ध=१९, न=२०, प=२१, फ=२२, ब=२३, भ=२४, म=२५ और य=३०, र=४०, ल=५०, व=६० श=७०, ष=८०, स=९०, ह=१०० (विस्तृत व्याख्या हेतु पं० सुधाकर द्विवेदी कृत "गणक तरङ्गिणी" पृष्ठ ३-४ देखिये)

से ही होने लग गया था। वैदिक साहित्य में यद्यपि स्पष्ट रूप से तो अव्यक्त गणित अथवा बीज गणित का उल्लेख नहीं मिलता तथापि बीज गणित के मूल सिद्धांतों (Fundamental principles) का संकेत अवश्य मिलता है। बीज गणित का प्रयोग दार्शनिक विवेचन में भी होता था। मलिक मिश्रण की व्याख्या करते हुए कहा गया कि "अध्यारोप और अपवाद विधि से ब्रह्म के स्वरूप को अध्यारोप निष्प्रपंच ब्रह्म मे जगत का आरोप कर देना है और अपवाद विधि से आरोपित वस्तु का पृथक्-पृथक् निराकरण कर देना होता है। इसी से उस स्वरूप को ज्ञात कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रथमतः आत्मा के ऊपर शरीर का आरोप कर दिया जाता है। तत्पश्चात् आत्मा को अन्नमय, मनोमय, विज्ञानमय, ज्ञानमय और आनन्दमय इन पंच कोषों एवं स्थूल और सूक्ष्म कारण शरीरों में पृथक् कर उससे आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ—

$क^2 + २क = ३५$ यहाँ अज्ञात राशि का मूल्य निकालने के लिए दोनों ओर १ जोड़ दिया जाता है। इससे अज्ञात राशि का मूल्य निकल आता है—

$$क^2 + २क + १ = ३५ + १$$
$$(क + १)^2 = ३६$$
$$क + १ = ६$$
$$क + १ - १ = ६ - १$$
$$क = ५$$

इस उदाहरण में पहले जो एक जोड़ा गया था, अन्त में उसी को निकाल दिया। इसी प्रकार जिस शरीर का आत्मा के ऊपर आरोप किया गया था अपवाद द्वारा उसी को शरीर से पृथक् कर दिया जाता है। उसी प्रकार दर्शन के प्रकाश में बीज गणित के सारे सिद्धान्त आध्यात्मिक जान पड़ते हैं।[१]

आध्यात्मिक क्षेत्र के साथ-साथ ज्योतिष की सूक्ष्म समस्याओं का हल बीज गणित द्वारा ही निकाला जाता है। वैदिक काल में बीज गणित का स्वरूप रेखा गणितीय ही था। जैसा कि डा० विभूतिभूषण दत्त ने भी कहा है कि "हिन्दू बीज-गणित का उद्‌भव शुल्व साहित्य (८००-५०० ई० पू० व ब्राह्मण साहित्य (१२०० ई० पू० तक पीछे ले जाया जा सकता है। लेकिन उस समय अधिकांशतः इसका स्वरूप रेखागणितीय ही था। (The origin of Hindoo Algebra can be traced back to the period of the sulba (800–500 B.C.) and Brahmana [1200 B.C.]. But it was then mostly Geometrical')[२]

१–भारतीय ज्योतिष—ले० नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ ३५-३६।

२-The Science of Sulba–by Dr. Dutta.

अब हम कुछ बीज गणितीय [Algebrical] समीकरणों [Equations] पर विचार करेंगे। डा० दत्त[1] ने महावेदी [Great Altar] का समीकरण प्रस्तुत करते हुए कहा है—

It has baen described to be of the form of an isoscale trapazium whose face is 24 units long, base 30 and attitude 36. If x be the enlarged units of measure taken in increasing the size of the alter by m units of area, we must have—

$$36\ x \times \frac{(24\ x + 30\ x)}{2} = 36 \times \frac{(24+30)}{2} + m$$

$$\text{or} \quad 972\ x^2 = 972 + m$$

$$x = \sqrt{1 + \frac{m}{972}}$$

If m is to be put equal to 972 (n-1), so that the area of the enlarged alter is n times, its original area we get

$$x = \sqrt{n}$$

इसमें बताया गया है कि एक समाद्विबाहु समलम्ब जिसके कि शीर्ष की लम्बाई २४ इकाई है, आधार ३० इकाई व लम्ब ३६ इकाई है। यदि आकार को बढ़ाने हेतु 'क' इकाई की वृद्धि की जाय तो वेदी का क्षेत्र जो 'म' इकाई क्षेत्र का है, निम्न होगा—

$$३६क \times \frac{(२४क + ३०क)}{२} = ३६\frac{(२४+३०)}{२} + म$$

$$\text{या} \quad ९७२क^2 = ९७२ + म$$

$$क = \sqrt{\frac{१+म}{९७२}}$$

यदि 'म' का मान ९७२ (न-१) रख दिया जाय कि अभिवृद्ध वेदी 'न' गुणा हो तो उसका मूल क्षेत्रफल निम्न होगा—

$$क = \sqrt{न}$$

इस सिद्धान्त का निरूपण शतपथ ब्राह्मण में भी हुआ है।[2] वहाँ न का मूल्य १४ देकर क का मूल्य ज्ञात किया गया है। यथा—

$$क = \sqrt{१४}$$

$$क = ३.७४\cdots\cdots$$

---

१ – History of Hindoo Mathematics, Vol. II PP 6-7.

२ – शत० ब्रा०, १०।२-३।७।

डा० दत्त ने अपनी पुस्तक "शुल्वा"[१] में एक वर्ग द्विघात समीकरण (quadratic equation) प्रस्तुत किया है। वे अ क^{२} + ब क = स समीकरण हल करते हुए क^{२} = $-$१ + $\frac{अ}{७}$ सिद्ध करते हैं।

बौद्धायन ने भी इसी प्रकार एक वर्ग द्विघात समीकरण (quadratic equation) समकोण त्रिभुज (Right angle triangle) के आधार पर प्रस्तुत किया है। वह निम्न प्रकार से है—

क^{२} + ख^{२} = ग^{२} (ग त्रिभुज का कर्ण है।)

इस समीकरण द्वारा दो भुजाओं के ज्ञात होने पर तीसरी भुजा ज्ञात की जा सकती है। यदि भुजा क तथा ख क्रमशः ३ तथा ४ इकाई हो तो—

$$(३)^{२} + (४)^{२} = ग^{२}$$
$$९ + १६ = ग^{२}$$
$$२५ = ग^{२}$$
$$(५)^{२} = ग^{२}$$
$$\therefore ५ = ग$$

अर्थात् तीसरी भुजा (कर्ण) की लम्बाई ५ इकाई होगी। किसी एक भुजा के ज्ञात होने पर तीनों भुजाएं ज्ञात करने का सूत्र शुल्व सूत्रों में प्राप्त होता है।[२]

यदि क^{२} + ख^{२} = ग^{२} हो तो तीनों भुजाओ का नाप निम्न प्रकार होगा—

अ; $\frac{३}{४}$ अ, $\frac{५}{४}$ अ

व अ; $\frac{५}{१२}$ अ, $\frac{१३}{१२}$ अ

उक्त सूत्रों की सहायता से एक भुजा ज्ञात होने पर तीनों भुजाएं ज्ञात की जा सकती हैं। वेद संहिताओ मे हमें बीजगणितीय चिति प्रश्न भी प्राप्त होते हैं। चिति प्रश्नो को गणितीय क्रम (Mathematical Prograssions) भी कहा जाता है। आधुनिक बीजगणित में तीन प्रकार के गणितीय क्रम प्रचलित हैं। अंकगणितीय क्रम (Arithmatical Prograssions), रेखागणितीय क्रम (Geomatrical Prograssions) अथवा गुणोत्तर श्रेणी क्रम व व्युत्क्रम श्रेणी (Harmonic Prograssions)। इनमे से अंक- गणितीय व गुणोत्तर श्रेणी क्रम हमें वेदों में प्राप्त होता है।

१—Dr Dutta's "Sulba" PP. 167.

२—वही, पृ० १८०।

अंक गणितीय क्रम—अंकों की वह श्रेणी (Series) जिसमें प्रत्येक पडोसी अंकों मे सामान्य अन्तर (Common Differnce) बना रहता है, उसे अंकगणितीय क्रम कहा जाता है यथा—

(क) १, २, ३, ४, ५, ६, ...

(ख) १, ३, ५, ७, ६, ११ ....

उक्त प्रथम श्रेणी में प्रत्येक उत्तर एवं पूर्व अंक के मध्य सामान्य अन्तर १ बना हुआ है। अत. यह श्रेणी अंक गणितीय क्रम में है। इसी प्रकार दूसरी श्रेणी में सामान्य अन्तर २ है। इन्हें सामान्यान्तर अंक श्रेणी भी कहा जा सकता है, क्योंकि पूरी श्रेणी मे प्रत्येक पड़ोसी अकों के जोड़े के मध्य सामान्य अन्तर बना रहता है। इस प्रकार की सामान्यान्तर अक श्रेणियाँ वेदो मे काफी उपलब्ध होती हैं। अथर्ववेद मे एक ऐसी श्रेणी आई है जो उक्त उदाहरण की पहली श्रेणी से मिलती है। वह है—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते,
न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते
य एतं देवमेकंवृत वेद।[1]

अर्थात् परमेश्वर दूसरा नहीं है, न तीसरा है और न चौथा ही कहा जा सकता है। पांचवा नही है और छठा नहीं, और न सातवां ही कहा जाता है। आठवा नही है नवां नहीं है न दसवां ही कहा जाता है। जो इस देव को एकत्व से युक्त जानता है। (वही सत्य जानता है।)

उक्त मन्त्र मे जो श्रेणी बनती है वह निम्न प्रकार से है—

२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ६, १०

उक्त श्रेणी मे सामान्य अन्तर (Common difference) १ है। इसी प्रकार यजुर्वेद में निम्न सामान्यान्तर श्रेणी प्रस्तुत की गई है[2]—

१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५, २७, २६, ३१, ३३.

इस अक श्रेणी में सामान्य अन्तर २ है। इसी प्रकार की एक और श्रेणी देखिए—[3]

४, ८, १२, १६, २०, २४, २८, ३२, ३६, ४०, ४४, ४८.

इन अंक श्रेणियों का उपयोग वेदी निर्माण हेतु ली जाने वाली ईंटों की कुल संख्या ज्ञात करने हेतु किया जाता था। हवन-कुण्ड नीचे से सकड़ा होता है

१—अथर्व सं०, १३। ४। १६।
२—यजु० सं०, १८। २४।
३—यजु० सं०, १८। २५।

व ज्यों-ज्यों ऊपर उठता है त्यों-त्यों उत्तरोत्तर चौड़ा होता रहता है। इसी प्रकार उक्त यजुर्वेद की अंक श्रेणियां निम्नतम अंक से उत्तरोत्तर अधिक होती चलती हैं। इन अंक श्रेणियों के योग से ही आर्य जान पाते थे कि "अमुक वेदी हेतु इतनी ईंटे चाहिए और आहुतियों की इमला-निर्धारित करने में भी गणित का प्रयोग होता था।"[1] इन श्रेणियों के योग की विधि वैदिक साहित्य में उपलब्ध नहीं, लेकिन उत्तर-कालीन गणितज्ञों ने इस प्रकार की अंक श्रेणियों के योग की विधि प्रस्तुत की है, परवर्ती गणितज्ञ अपने ग्रन्थों में प्रायः लिखते हैं कि यह ग्रन्थ परम्परागत सूत्रों के आधार पर लिख रहा हूं। इससे यह संकेत मिलता है कि परवर्ती गणितज्ञों द्वारा प्रयुक्त सूत्र वैदिक काल में भी प्रचलित रहे हों। आर्यभट्ट[2] ने सामान्यान्तर अंक श्रेणी के योग का निम्न सूत्र दिया है—

इष्टं व्येकं दलितं सपूर्वमुत्तरगुणं सम्मुख मध्यम्।
इष्ट गुणितमिष्टधनं त्वथवाद्यन्त पदार्धहतम्॥

"इसमें इष्ट से पद (गच्छ) और इष्ट धन से सर्व धन अर्थ लिया गया है। पूर्व से पहली संख्या है जिसे आदि मुख भी कहते हैं।"[3]

उक्त सूत्र के अनुसार—

आदि = आ ; उत्तर = चय = च और पद = गच्छ = ई है। तो उसका मध्य धन

$$= च\frac{(इ-१)}{२} + आ = च\frac{(इ-१)+२ आ}{२}$$

और इष्ट धन—

$$= इ\left(\frac{[च (इ-१) + २आ]}{२}\right) \text{ होगा}$$

उक्त सूत्र में यदि आ = १ और च = १ और ई = प हो तो निम्न श्रेणी बन जायेगी—

$$१ + २ + ३ + ४ \cdots\cdots प = \frac{प (प + १)}{२}$$

इस सूत्र के अनुसार यजुर्वेद की सामान्यान्तर अंक श्रेणियों का योग निम्न होगा—

(i) १ + ३ + ५ + ७ + ९ + ११ + १३ + १५ + १७ + १९ + २१ + २३ + २५ + २७ + २९ + ३१ + ३३, ...

---

१ – वैदिक सम्पति – पं० रघुनन्दन शर्मा।
२ – आर्यभट्टीयम, गणितपाद, श्लोकाङ्क २२।
३ – पाटी गणित का इतिहास—पं० सुधाकर द्विवेदी, पृ० ११५।

उक्त श्रेणी में सूत्र के अनुसार—
आ = १ (आरम्भ की संख्या)
च = २ (सामान्यान्तर)
ई = १७ कुल पदों की संख्या

अतः सूत्र के अनुसार—

$= १७ \times \frac{२(१७-१)+२\times १}{२}$

$= १७ \times \frac{२(१६)+२}{२}$

$= १७ \times \frac{३२+२}{२}$

$= १७ \times \frac{३४}{२}$

$= १७ \times १७ =$ २८९ इष्ट धन।

(ii) $४+८+१२+१६+२०+२४+२८+३२+३६+४०+४४+४८$

उक्त श्रेणी में सूत्र के अनुसार—
आ = ४
च = ४
ई = १२

अतः सूत्र के अनुसार—

$= १२ \times \frac{४(१२-१)+२\times ४}{२}$

$= १२ \times \frac{४४+८}{२}$

$= १२ \times \frac{५२}{२}$

$= १२ \times २६ =$ ३१२ इष्ट धन

गुणोत्तर अंक क्रम (Geomatrical Prograssions) :—अंक गणितीय क्रम (Arithmatical prograssions) अथवा सामान्यान्तर अंक श्रेणी क्रम की भांति वेदों में गुणोत्तर अंक क्रम श्रेणी भी प्राप्त होती है। "अंकों अथवा बीजों की वह श्रेणी जिसमें प्रत्येक पड़ोसी अंकों का आपसी अनुपात पूरी श्रेणी में एक

सा रहता है वह श्रेणी गुणोत्तर अंक क्रम अथवा रेखागणितीय क्रम में कहलाती है।[1] उदाहरणार्थ :-

(i) १, २, ४, ८, १६ ....

(ii) १, ३, ९, २७, ८१.... ...

उक्त श्रेणियो में से प्रथम श्रेणी की सख्याएँ उत्तरोत्तर द्विगुणित होती चली गई हैं अर्थात् समूची श्रेणी में १:२ का अनुपात प्रत्येक पडौसी अंकों के जोड़े में विद्यमान है। इसी प्रकार दूसरी अंक श्रेणी में की सख्याएँ उत्तरोत्तर त्रिगुणित होती चली गई हैं। अर्थात् इसमे प्रत्येक दो पडौसी अंकों में १:३ का अनुपात विद्यमान है। इस प्रकार की गुणोत्तर अक क्रम श्रेणी यजुर्वेद में उपलब्ध होती है। वह निम्न प्रकार से है[2]—

१, १०, १००, १०००, १००००, १०००००, १००००००...........परार्ध।

उक्त अंक श्रेणी की संख्याएँ उत्तरोत्तर दस गुणित होती गई हैं। अर्थात् इसमे प्रत्येक दो पड़ोसी सख्याओ में १:१० का अनुपात विद्यमान है। इस प्रकार की अक श्रेणियो के योग की विधि भास्कराचार्य ने निम्न प्रकार से बताई है[3]—

विषमे गच्छे व्येके गुणकः स्थाप्यः समेऽर्द्धिते वर्गः।
गच्छक्षयान्तमन्त्या द्व्यस्तं गुणवर्गजं फलं यत्तत् ॥१॥
व्येकं व्येकगुणोद्धृतमादिगुणं स्याद्गुणोत्तरे गणितम्।

जहाँ गच्छ[4] विषम हो वहां गच्छ में से एक घटाकर गुण का स्थापन करना और जहाँ गच्छ सम हो वहाँ आधा स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ तक गच्छ शून्य हो वहा तक यह क्रिया की जाय। इस प्रकार गुण एवं वर्ग की पक्ति बन जायगी। फिर पूर्व का जो गुण है, उसका उसके ऊपर जो वर्ग है वहाँ वर्ग कर स्थापन करना। फिर उस वर्ग फल के आगे गुण हो तो उससे वर्ग फल का गुणन करना अथवा वर्ग हो तो वर्ग करके स्थापित करना। इसी प्रकार कर सबके ऊपर जो अंक राशि हो, उसमें से एक को घटा कर जो अवशेष रहे उसको एक से हीन जो गुण हो उसका भाग देना और जो लब्धि हो उसका आदि धन से गुणन कर जो फल मिलेगा वही गुणोत्तर अर्थात् द्विगुणोत्तर का फल है।

---

१ — "वेदों में गणितीय क्रम"—ले० मांगीलाल व्यास 'मयंक', साप्ताहिक आर्य, १४ सितम्बर १९५८ में प्रकाशित।

२ — यजु० सं०, १७।२।

३ — लीलावती पृ० १२२।

४ — पदों की कुल सख्या को गच्छ कहते हैं। गच्छ = (ई)

इस विधि से जो यजुर्वेद की दशगुणोत्तर अंक क्रम श्रेणी को प्रथम सात संख्याओं का योग निम्न होगा। इस श्रेणी में—

आदि　　　= १
उत्तर दशगुण　= १०
गच्छ　　　= ७

इसमें गच्छ विषम है अतः इसमें से १ घटाकर ६ गुण स्थापन किया। ६ सम है अतः इसका आधा ३ हुआ। इसका वर्ग स्थापित किया। ३ विषम है अतः इसमें से १ घटाया तब २ हुए। इसका गुण स्थापित किया। २ सम है अतः इसका आधा १ है, इसका वर्ग स्थापित किया। पुन १ में से १ घटाया तब हुआ ० इसका गुण स्थापित किया।

६ गुण	गुण १०००००
३ वर्ग	वर्ग १००००
२ गुण	गुण १०००
१ वर्ग	वर्ग १००
० गुण	गुण १०

सबसे नीचे गुण के सम्मुख १० गुण स्थापित किया फिर ऊपर वर्ग के सम्मुख १० का वर्ग १०० रखा। फिर उसके ऊपर गुण है अतः १०० का गुण १० गुण अर्थात् १००० रखा पुन. ऊपर वर्ग है अतः १००० का वर्ग १०,००,००० रखा, ऊपर गुण है अतः १०,००,०००का १० गुण १,००,००,००० रखा। इस गुणन फल में से १ घटाया तो १,००,००,०००–१ = ९९,९९,९९९ हुए। इसमें एक से हीन गुण = चय (१०–१) = ९ का भाग दिया तब लब्धि ११११११११ हुई। इसे आदि धन १ से गुणा किया तो गुणनफल ११११११११ ही हुआ, यही संकलित इष्ट धन है।

इस प्रकार बीजगणित के सिद्धान्तों के अनेको संकेत वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते है। अतः प्रमाणित होता है कि बीज–गणित के क्षेत्र में भी आर्यों ने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

अध्याय ५

लेखन कला

पूर्व अध्यायों में गणित विद्या की तीन प्रमुख शाखाओं अंक गणित, रेखा गणित व बीज गणित — पर प्रकाश डाला गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में गणित विद्या का काफी विकास हो गया था। प्रस्तुत अध्याय में लेखन कला (Art of Writing) पर विचार किया जायेगा। वैदिक-काल के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न भ्रान्तियो मे से एक यह भी है कि आर्य लिखना नही जानते थे। लेकिन गणित और लेखन का अभिन्न सम्बन्ध है। बिना लेखन के गणितीय प्रश्नों का विस्तार सम्भव नही। कतिपय विद्वानो का यह विचार है कि वेद आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं, अतः उन्हे लिखने की आवश्यकता ही नही थी। वेदों को श्रुति कहा गया है, अतः वेद व वैदिक साहित्य सुन कर ही कण्ठस्थ कर लिया जाता था।

इसी धारणा के अनु[illegible] विद्वानों ने यह भी कह दिया है कि भारतीय लिपियों का विकास सिमेटिक लिपि [illegible] आ। इस प्रकार लेखन-कला के क्षेत्र में भी जगद्गुरु *भारत को विदेशियों का ऋ[illegible] घोषित कर दिया गया। इन [illegible] भ्रान्त धारणाओं* का प्रतिपादन यूरोपीय लेखको द्वारा हुआ। उन्ही का अन्धानुकरण कर कुछ भारतीय लेखको ने भी यह स्वीकार कर लिया। वर्तमान मे पढाई जाने वाली अधिकांश *भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तको में इसी बात को दोहराया गया है* कि आर्य लिखना नही जानते थे। इसके साथ यह भी कहा गया है कि भारतीय लिपियां सेमेटिक लिपियों से व्युत्पन्न हुई हैं।

लिपि शास्त्र विशेषज्ञो मे से पहला दल उनका है जो भारतीय लिपि को फिनेशियन लिपि से व्युत्पन्न मानते हैं।[1]

१—डॉ० बर्नेल ने अपने ग्रन्थ South Indian Paliography के पृ० ५० पर लिखा है कि 'भारतीयों ने फिनेशियन लोगों से लिखना सीखा और फिनेशियन अक्षर, जिनसे कि दक्षिणी तथा अशोक लिपि [ब्राह्मी] व्युत्पन्न हुई, भारत में ५०० ई०पू० से पहले नही आए थे और न वे ४००ई०पू० के बाद आए।"

इस गुट के अन्तर्गत विलियम जोन्स, कास्लेसियस, डे के, टेलर, ब्युन्हर, बर्नेल आदि विद्वान् सम्मिलित हे । इस मत के अनुयायियो के भी दो दल हैं। प्रथम दल है ब्यूलर व उनके अनुयायियों का । ब्यूलर आदि की मान्यता है कि भारतीय लिपि की उत्पत्ति उत्तरी सिमेटिक लिपि [फिनेशियन लिपि] से हुई । द्वितीय दल टेलर व उनके अनुयायियों का है, जोकि भारतीय लिपि को दक्षिण फिनेशियन लिपि से व्युत्पन्न मानता है । इन दोनो दलो का आपसी मत भेद भी इतना तीव्र है कि इनसे किसी एक निष्कर्ष पर नही पहुंचा जा । । क्योकि दोनो मतों के मतानुयायियों ने अपने अपने मतो की पुष्टि में जो प्रमाण दिए है, वे ठोस नही हैं । मात्र कल्पना व अटकल-पच्चू विधियों से ही उन्होने अपने मतों को प्रस्तुत किया है । इन दोनों मतों के नुयायियों द्वारा अपनाई गई शोध-पद्धति भी वैज्ञानिक नही है । इन्होंने जिस शोध द्धति को अपनाया है, उससे तो किसी भी लिपि को किसी भी लिपि से व्युत्पन्न ाबित किया जा सकता है । मेरा विषय उनकी शोध पद्धति की विवेचना करना नही ।

टेलर और ब्यूलर के मतों की आलोचना के लिए हमें कही दूर से प्रमाण ााने की आवश्यकता नही । उनके सिद्धान्त की निस्सारता तो सिन्धु सभ्यता की ुदाई से प्राप्त मुद्राएं प्रकट कर देती हैं । सिन्धु सभ्यता से प्राप्त मुद्राओं र लेख उत्कीर्ण हैं । यदि भारतीय लिपि फिनेशियन लिपि से ही व्युत्पन्न है, तो निःसन्देह सिन्धु लिपि भी फिनेशियन लिपि से ही व्युत्पन्न हुई और यदि ऐसा है तो क्यो नही फिनेशियन अक्षरों की सहायता से सिन्धु लिपि को पढ लिया जाता । लेकिन ऐसा करने में वे असमर्थ रहे । इससे उनके सिद्धान्त की निस्सारता प्रकट हो जाती है ।

वर्तमान में प्राप्य प्राचीनतम भारतीय लिपियों मे ब्राह्मी और खरोष्ठि हैं । इन लिपियों के उद्भव पर विद्वानो ने भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए है । ब्राह्मी लिपि के सम्बन्ध मे कतिपय विचारकों का मत है कि य लिपि ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुई, अतः ब्राह्मी कहलाई।[१] यह बात समझ में आने वाली कदापि नही । अव्वल तो यह भी ज्ञात नही की यह ब्रह्मा कौन था ? जो मुंह से कभी ब्राह्मण उगलता था, तो कभी लिपियां । यदि यह मान भी लिया जाय कि ब्रह्मा कोई एक व्यक्ति था तो ामस्या यह आती है कि लिपि का मुंह से क्या सम्बन्ध ? हां भाषा का मुंह से अवश्य ाम्बन्ध है । लिपि का सम्बन्ध हाथ से है ।

---

१ – ह्वेनसांग ने भी अपने यात्रा विवरण में कहा है कि "भारतवासियों की वर्ण-माला के अक्षर ब्रह्मा ने बनाए थे और उनके रूपान्तर पहले से अब तक चले आ रहे हैं। सेमुअल बील कृत "बुद्धिष्ट रेकर्ड ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड" पृ० ७७ ।

कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि मानव खोपड़ी की हड्डियों के जोड़ के आकार से इसकी व्युत्पत्ति हुई। चूंकि खोपड़ी ब्रह्म-कपाली कहलाती है, अतः लिपि भी ब्राह्मी कहलाती है।[1] यह सिद्धान्त भी कोरी कल्पना पर आधारित है। ब्रह्म कपाली के जोड़ की समस्त शक्लों से ब्राह्मी अक्षरों का आकार नहीं मिलता और यदि ऐसा होता भी तो इसका नाम ब्राह्मी न होकर ब्रह्म कपालिक लिपि होता। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है।

ब्रह्म शब्द के अनेकों अर्थ हमें वैदिक साहित्य में मिलते हैं। ब्रह्म शब्द के नैरुक्तिक अर्थ में हमें जाने की आवश्यकता नहीं। सामान्यतया ब्रह्म-विद्या का तात्पर्य आध्यात्मिक विद्या से लिया जाता है। अतः ब्रह्म विद्या से सम्बन्धित अपने अनुभवों को जिस लिपि में वैदिक कालीन ब्राह्मणों ने लिपि-बद्ध किया उसी लिपि को ब्राह्मी लिपि कहा गया। कालान्तर में यह सर्वमान्य हो गई। अतः अन्य सामग्री भी इसी लिपि में लिखी जाने लगी।

खरोष्ठि लिपि के सम्बन्ध में भी ब्राह्मी की भांति कुछ मतभेद पाए जाते हैं कतिपय विद्वानों ने इस शब्द की सन्धि-विच्छेद करते हुए कहा है कि लिपि 'खर + ओष्ठि' लिपि है। इससे इसका अर्थ हुआ गधे के होठों वाली लिपि। विद्वानों की यह मान्यता है कि यह यवन लिपि है। तत्कालीन विद्वानों ने इसकी निन्दा स्वरूप यह नाम रख दिया। लेकिन यह मत उचित नहीं। अशोक के पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्राप्त होने वाले अभिलेखों में यह लिपि प्राप्त होती है, लेकिन अशोक ने कहीं भी इसका उल्लेख नहीं किया कि मैं यवन-लिपि में लेख लिखवा रहा हूँ। इसके अलावा यवन अर्थात् यूनानी लिपि से यह खरोष्ठि लिपि किंचित भी मेल नहीं खाती। सबसे बड़ा अन्तर तो यह है कि यूनानी लिपि बांए से दाएं लिखी जाती है, जबकि खरोष्ठि दाएं से बाएं अर्थात् उर्दू, फारसी, अरबी की तरह लिखी जाती है। वस्तुतः यह लिपि तक्षशिला व उसके आसपास के प्रदेशों में प्रचलित थी। उसके पड़ौस में ही पर्शियन लिपि प्रचलित थी अतः उन्हीं पड़ौसी लिपियों से ही यह लिपि प्रभावित हुई व दाएं से बाएं लिखी जाने लगी। तक्षशिला जो उस समय शिक्षा का महान् केन्द्र था उसमें विद्यार्थियों के हितार्थ कुछ ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ कराई गईं। इसके लिए तत्कालीन पद्धति के अनुसार भोज-पत्रों अथवा ताडपत्रों पर अक्षर खरोंच कर खोद दिए जाते व फिर उस पर खड़िया आदि का लेप कर दिया जाता। खुदे हुए भागों में खड़िया बैठ जाती थी। इस प्रकार एक स्थाई लेप तैयार हो जाता था। इस प्रकार खरोचने की क्रिया के कारण सम्भवतः इसे खरोष्ठी अथवा ओष्ठी लिपि कहा गया। मसि का लेप किया जाता है, अतः "लिप् लिप्यते" धातु से लिपि शब्द बना।

---

१ – पाटी गणित का इतिहास—पं० सुधाकर द्विवेदी कृत।

इससे स्पष्ट हो गया कि ब्राह्मी का नामकरण विषय के आधार पर हुआ। खरोष्ठि का नामकरण क्रिया के आधार पर हुआ। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दोनों लिपियां भारतीय ही हैं। हां सीमान्तर प्रदेश में प्रचलित होने के कारण इस लिपि पर विदेशी प्रभाव अवश्य रहा। इन लिपियों में लिखे हुए लेख हमें अशोक के काल से ही पर्याप्त मात्रा में मिलने प्रारम्भ होते हैं। अतः इस लेखन कला की वैदिक परम्परा का साहित्यिक सन्दर्भों द्वारा अध्ययन करेंगे।

प्रो० मैक्समूलर ने भारतीय लिपि के सम्बन्ध में कहा है कि पाणिनी की परिभाषा में एक भी ऐसा शब्द नहीं जिससे कि लिपि शब्द बने।[1] लेकिन यह कथन उचित नहीं। पाणिनी की अष्टाध्यायी में लिपि शब्द का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है[2]—

दिवा विभानिशाप्रभा भाष्कारान्तानन्तादि बहुना द्दी कि लिपि लिबिबलि भक्ति कर्तचित्रक्षेत्रांसयाजङ्धा वा इयंसद्धनुरस्यः चु।

वेदों में भी लेखन-कला का उल्लेख मिलता है। वेदों में अंक शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है। यजुर्वेद[3] मे अक शब्द का प्रयोग निम्न प्रकार से हुआ है—

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः।
श्येनस्येव ध्रजतोऽङ्कसं परि दधि क्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा॥

इसी प्रकार कई अन्य स्थलों पर भी इसका प्रयोग हुआ है। "अंक शब्द" "अकि चिह्ने" धातु से व्युत्पन्न हुआ है। अतः अंक का अर्थ है—चिह्न करना। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों को चिह्न बनाने का ज्ञान अवश्य था इसी प्रकार गणक शब्द का भी प्रयोग यजुर्वेद मे हुआ है।[4]

नर्माय पुंश्चलूं हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं,
तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम्॥

गणक शब्द का प्रयोग लेखा जोखा रखने वाले के अर्थ में हुआ है। इस प्रसंग में तैतरीय संहिता[5], 'मैत्रायणी संहिता'[6] व 'काठक संहिता'[7] भी द्रष्टव्य है। कुछ विद्वानो ने ऋग्वेद के मन्त्र[8]—

---

१ – प्रो० मैक्समूलर कृत History of Ancient Indian Literature, PP. 260.
२ – अष्टाध्यायी, ३।२।११।
३ – यजु० सं०, ६।१५।
४ – यजु० सं०, ३०।२०।
५ – तै० सं०, ४।४०; ११।४८७।२; २०।१।
६ – मै० सं०, २।८।११।
७ – का० सं०, ३६।६।
८ – ऋ० सं०, १०।६२।७।

युजानिः सृजन्त वाग्रतो व्रजं गोमन्तमश्विनं ।
२ ं में ददतो अष्टकर्ण्यं श्रवो देवेष्वक्रत ॥

के पद 'सहस्र' मे ददतो अष्टकर्ण्यः' पद की व्याख्या करते हुए कहा है कि "मुझे एक हजार ऐसी गायें दो जिनके कान पर आठ लिखा हो" लेकिन यह भाष्य उचित नही। इस सूक्त का अध्ययन करने मे ज्ञान होता है कि यहा गाय नही वरन् वाणी का वर्णन किया गया है। अत: यहा गौ का अर्थ वाणी ही उचित ठहरता है। इसके अलावा 'अष्ट कर्ण्यों' मे 'अष्ट' शब्द कर्ण का संख्या वाची विशेषण ही उचित ठहरता है।

वेदो में और भी ऐसे कई मन्त्र है, जिनसे कि लेखन कला सिद्ध होती है। ऋग्वेद[1] मे एक जुवारी का वर्णन आता है, उसमे वह जुवारी कहता है, एक बार बाजी लगाकर मैंने अपनी पतिव्रता पत्नि को खो दिया। इस मन्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य उस समय कोई ऐसा खेल खेलते थे, जिसमे कि किसी घनाकार पाशे का प्रयोग होता हो और उसकी दिशाओ पर १,२,३,४,५ व ६ के चिह्न बनाए जाते होगे। राथ व बोथलिंग ने भी अपने कोप में यही कहा है।

इसके अतिरिक्त लेखन कला की पुष्टि में एक अन्य युक्ति भी दी जा सकती है आर्यों का ज्योतिष व गणित सम्बन्धी ज्ञान अत्याधिक विकसित हो चुका था। गणित सम्बन्धी चर्चा तो पूर्व अध्यायों में हुई ही है। शपतथ ब्राह्मण में एक अत्यन्त विशाल हिसाब का उल्लेख हुआ है, वह निम्न प्रकार से है —[2]

स ऐक्षत प्रजापतिः ॥

त्रयीं वाव विद्याया सर्वाणि भूतानिहन्त त्रयामेव विद्यामात्मानमभिसंस्कर वा इतिः ॥

स ऋचो व्यौहत् ।

द्वादश बृहती सहस्राण्येतावत्यो ह्यर्चा याः प्रजापतिसृष्टास्तास्त्रिं शत्तमे व्यूहे पङ्क्तिष्व तिष्ठन्त तास्त्रिं शत्तमं व्यूहे तिष्ठन्त तस्मा त्रिंशन्मासस्य रात्रयोय यत्पङ्क्तिपु तस्मात् पाङ्क्त प्रजापतिस्ता अष्टाशत शतानि पङ्क्त्यो भवन् ॥

अथेतरौ वेदौ व्यौहत् ।

द्वादशैव बृहतीसहस्राण्यष्टौ यजुर्षा चत्वारि साम्नामेता व एतयो वेदयार्यत्प्रजापतिसृष्ट तौ त्रिंशत्तमे व्यूहे पङ्क्तिष्ठे तां तौ यजिशत्तमे व्यूहे तिष्ठे तां तस्मात्रिंशन्मासस्य रात्र्यां य यत्पङ्क्तिपु तस्मात्पाङ् प्रजापतिस्ता अष्टाशतमेव शतानि पङ्क्त्यो भवन् ॥

ते सर्वे त्रयो वेदा ।

दश च सहस्राण्यष्टौ च शतान्यशीतीनाभवन्तामुन्हर्तेन-
मुन्हर्तेनाशीतीमाप्नोन्मुन्हर्तेनाशीती समपद्यत ॥

---

१ – ऋ० सं०, १० | ३४
२ – शत० ब्रा० १० | ४ |

इन मन्त्रों का भाव यह है कि "ऋग्वेद के अक्षरों से प्रजापति ने १२०० बृहती (बृहती छन्द में कुल ३६ वर्ण होते हैं) छन्द बनाए (इस प्रकार ऋग्वेद के कुल अक्षर १२०० × ३६ = ४,३२,००० हुए) इसी प्रकार सामवेद व यजुर्वेद के भी क्रमशः ४००० व ८००० बृहती छन्द बन,ए (इस प्रकार सामवेद व यजुर्वेद के अक्षरों की सम्मिलित संख्या ४,३२,००० हुई) इन्हीं अक्षरों से पंक्ति छन्द (जिसमें कि ८,८ वर्णों के ५ पद अर्थात् कुल ४० अक्षर होते हैं) बनाने से ऋग्वेद के (४,३२००० ÷ ४०) १०८०० छन्द बनेंगे व उतने ही सामदेव व यजुर्वेद के मिलकर बनेंगे। एक वर्ष में ३६० दिन व एक दिन मे ३० मुहूर्त होते हैं अतः वर्ष भर में १०,८०० मुहूर्त हुए। इसी प्रकार तीनों वेदों से बनने वाले पंक्ति छन्दों की संख्या वर्ष भर में मुहूर्तों की द्विगुणित होती है।

उक्त मन्त्रों में कितना जटिल हिसाब लगाया गया है। ऐसा जटिल हिसाब बिना लिखित प्रयास किये नहीं हो सकता है। इस प्रकार के अनेकों जटिल हिसाब वेदों व वैदिक साहित्य में आए हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों को निश्चित रूप से लेखन कला का ज्ञान था।

अब तक हमने कतिपय ऐसी युक्तियों का सहारा लिया जिनसे कि वैदिक काल में लेखन कला का प्रचलित होना सिद्ध होता है। लेकिन कई वेद मन्त्रों में स्पष्ट रूप से लेखन क्रिया का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में कहा है—

विपूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथे मस्मभ्यं रन्धय ॥[1]

अर्थात्— (पूषन्) हे पोषक ! (आरया) लेखनी को। (वितुद) प्रेरणा दे, जिससे हम (हृदि) हृदय रूप से। (पणेः प्रियम) धोखे बाजों के कल्याण की इच्छा करें।

उक्त मंत्र से लेखक परमात्मा को लेखन शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना कर रहा है। वह अपने लेख द्वारा ऐसे उच्च विचार प्रकट करना चाहता है, जिससे निकृष्ट प्राणियों का भी कल्याण हो जाय अर्थात् उस लेख के पढ़ने से निकृष्ट व्यक्ति भी सद् मार्ग पर चलने लगें। इसमें उल्लिखित 'आरया' अर्थात् लेखनी शब्द से स्पष्ट हो जाता है कि लेखनी का प्रयोग उस काल में होता था।

इसी प्रकार एक और मन्त्र :—

आरिख किकिराकृणु पणीनाम् हृदया वे।
अथमस्मभ्य रंधय[2] ॥

अर्थात्— (कवे) हे ! विद्वान् आरिख) अच्छी तरह से लिख और (पणीनान) धोखे बाजों के हृदय (किकिराकृणु) कम्पायमान् कर दे।

---

१ – ऋ० सं०, ६।५३।६।
२ – ऋ० सं०, ६।५३।७।

उक्त मन्त्र मे भी लिखने का स्पष्ट उल्लेख हो गया है। उसी प्रकार एक और मन्त्र देखिए—

यां पूषन् ब्रह्मचोदनीमाराम् बिभर्ष्या घृणे।

तया समस्य हृदयमारिख किकिराकृणु ॥[1]

अर्थात्—(या पूषन्) हे पोषक (या ब्रह्मचोदनीमाराम) ज्ञान को प्रचोदित करने वाली (आरा) लेखनी को (विभर्ष्या) ग्रहण कर (तया) उससे (समस्य) समस्त प्राणियों के (हृदयं) हृदय में (आरिख) लिख दे व (किकिराकृणु) कम्पायमान कर दे।

इन मन्त्रो से स्पष्ट हो गया कि ऋग्वैदिक काल से ही भारत मे लेखन कला का प्रचार रहा है। अथर्ववेद मे गायों के कानों पर मिथुन का चिह्न बनाने की प्रथा का वर्णन किया गया है।[2] अथर्ववेद में ही एक अन्य स्थल पर इस प्रथा की निन्दा भी की गई है।[3] महर्षि वशिष्ठ ने भी अपनी स्मृति में लिखित प्रलेखो को ही प्रामाणिक माना है।[4]

इन समस्त प्रमाणों के प्रकाश में यह मानने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए कि वैदिक काल मे लेखन कला का प्रचार था। वेदो के विद्वान बूलर ने भी यह कहा है कि "इस अनुमान को रोकने के लिए कोई प्रमाण नही है कि वैदिक काल में भी लिखित पुस्तकें मौखिक शिक्षा व अन्य अवसरों पर काम मे ली जाती थी।" बोथलिंग महोदय का अनुमान है कि "साहित्य के प्रचार में लिखने का उपयोग नही होता था परन्तु नए ग्रन्थों के बनाने मे उसको काम में लाते थे।[5] डॉ० राथ ने तो दावे के साथ कहा है—"लिखने का प्रचार भारत में प्राचीन समय से ही होना चाहिए, क्योंकि यदि वेदों के लिखित पुस्तक विद्यमान न होते तो कोई पुरुष प्रातिशाख्य बना ही नही सकता।"

इन समस्त तथ्यो को देखते हुए हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वैदिक काल में लेखन कला का पर्याप्त प्रचार था।

१ – ऋ० सं०, ६,५३,७।
२ – अथर्व सं०, ६।१४१।
३ – अथर्व स०, १२।४से ६।
४ – वशिष्ठ स्मृति, १६।१०।१४–१५।
५ – मानव कल्प सूत्र की भूमिका, पृष्ठ ६९।